# श्री पार्श्वनाथ पुराण

लेखक :—

स्व०—पं० भूधरदासजी

प्रकाशक :—

दुलीचंद परवार

मालिक—जिनवाणी प्रचारक कार्यालय,

१६१।१, हरीसन रोड, कलकत्ता।

मूल्य—१॥) सजिल्द—२)

आचार्य कुन्द कुन्द सरस्वती भवन
पुस्तकालय
क्रमांक 307
बापू नगर, जयपुर
84

सरस्वती भवन बापूनगर, जयपुर
आचार्य कुन्द कुन्द सरस्वती भवन पुस्तकालय क्रमांक 307 बापूनगर जयपुर
सरस्वती भवन बापूनगर, जयपुर

कविवर भूधरदासजी विरचित—

# श्रीपार्श्वपुराण

श्रीपार्श्वनाथजीकी स्तुति

दोहा—मोहमहातमदलन दिन, तपलछमीभरतार। ते पारस परमेश मुझ, होहु सुमतिदातार ॥ १ ॥ वामानन्दन कल्पतरु, जयो जगतहितकार। मुनिजन जाकी आश करि, जाचैं शिवफलसार ॥ २ ॥ छप्पय—भुवनतिलक भगवंत, संतजनकमलदिवाकर। जगतजंतुबंधव अनन्त, अनुपम गुणसागर ॥ राग नाग-मथमंत,—दंत उच्छेपण बलि अति। रमाकन्त अरहंत, अतुल जसवंत जगतपति ॥ महिमा महंत मुनिजन जपत, आदि अन्त सबको सरन। सो परमदेव मुझ मन बसो, पार्सनाह मंगलकरन ॥ ३ ॥ विमलबोधदातार, विश्वविद्यापरमेश्वर। लछमीकमलकुमार, मारमातंग—मृगेश्वर ॥ मुखमयंकअवलोकि, रंक रजनीपति लाजै। नाममंत्रपरताप, पापपन्नग डर भाजै। जय अश्वसेनकुलचंद्र जिन, शक्र चक्र पूजत चरन। तारो अपार भवजलधितैं, तुम तरंड तारन तरन ॥ ४ ॥ बाघ सिंह वश होंहिं, विषम विषधर नहिं डंकैं। भूत प्रेत वैताल, व्याल बैरी मन शंकैं ॥ शाकिनि डाकिनि अगनि, चोर नहिं भय उपजावैं। रोग सोग सब जाहिं, विपत नेरे नहिं आवैं। श्रीपार्श्वदेवके पदकमल, हिये धरत निज एकमन। छूटैं अनादि बंधन बंधे, कौन कथा विनशैं विघन ॥५॥ चहुंगति भ्रमत अनादि, वादि बहुकाल गमायो। रही सदा सुख-आस,—प्यास जल कहूँ न पायो ॥ सुखकरता जिनराज, आज लों हिये न आये। अब मुझ माथे भाग, चरन चिंतामनि पाये ॥ राखौं संभाल उर कोषमें, नहिं बिसरौं पल रंकधन। परमादचोर टालन निमित, करौं पार्श्वजिनगुन कथन ॥ ६ ॥ चौपाई ( १६ मात्रा )—बंदौं तीर्थंकर चौबीस। बंदौं सिद्ध बसैं जगसीस ॥ बंदौं आचारज उवझाय। बंदौं परम साधुके पाय ॥ ७ ॥ ये ही पद पांचों परमेठ। ये ही सांच और सब हेठ ॥ ये ही मंगल पूज्य अतीव। ये ही उत्तम सरन सदीव ॥ ८ ॥ वंदौं जिनवानी मन सोध। आदि अन्त जो विगत वि-

रोध। सकलवस्तुदरसावनहार। भूमविषहरन औषधीसार ॥ ९ ॥ दोहा—बरतौ जग जयवंत नित, जिनप्रवचन अमलान। लोक महलमें जगमगै, मानिक दीप समान ॥ १०॥ हरो भरम दालिद्र दुख, भरो हमारी आस। करो शारदा लच्छमी, मुझउरअम्बुज वास ॥ ११ ॥ चौपाई—वंदौं वृषभसेन गनराज। गुरु गौतम भवजलधिजहाज ॥ कुंदकुंद मुनि प्रमुख सुपंथ। जे सब आचारज निरग्रंथ ॥ १२ ॥ जैनतत्वके जाननहार। भये जथारथ कथक उदार ॥ तिनके चरनकमल कर जोरि। करौं प्रणाम मानमद छोरि ॥ १३ ॥ दोहा—सकलपूज्य पद पूजकैं, अल्पबुद्धिअनुसार ॥ भाषापार्श्वपुराणकी, करौं स्वपरहित कार ॥ १४ ॥ चौपाई-जिनगुनकथन अगमविस्तार। बुधिबल कौन लहै कवि पार ॥ जिनसेनादिक सूरि महन्त। वरनन करि पायो नहिं अन्त ॥ १५ ॥ तौ अब अल्पमती जन और। कौन गनतिमें तिनकी दौर ॥ जो बहुभार गयंदन बहै। सो क्यों दीन शशक निरबहै ॥ १६ ॥ दोहा—कह जानैं ते यों कहैं, हम कछु बरन्यो नाहिं ॥ जे कह जानैं ही नहीं, ते अब कहा कहाहिं ॥ १७ ॥ नभ बिलस्त नापै नहीं चुलू न सागर तोय ॥ श्रीजिनगुनसंख्या सुजस, त्यों कवि करै न कोय ॥ १८ ॥ चौपाई—पै यह उत्तम नर अवतार। जिनचरचा विन अफल असार ॥ सुनि पुरान जो घुमैं न सीस। सो थोथे नारेल सरीस ॥ १९ ॥ जिनचरित्र जे सुनै न कान। देहगेहके छिद्र समान ॥ जामुख जैनकथा नहिं होय। जीभभुजंगनिको बिल सोय ॥ २० ॥ या प्रकार यह उद्यम जोग। कहत पुरानन पंडित लोग ॥ जिनगुनगान सुधारसन्याय। सेवत अल्पजन्म जुर जाय ॥ २१ ॥ घनाक्षरी—जौं लौं कवि काव्यहेत आगमके अच्छरको, अरथ बिचारैं तौलौं सिद्धि शुभध्यानकी। और वह पाठ जब भूपरि प्रगट होय, पढ़ैं सुनैं जीव तिन्हैं प्रापति है ज्ञानकी। ऐसैं निज परको विचार हित हेतु हम, उद्यम कियो है नहिं बान अभिमानकी। ज्ञानअन्श चाखा भई ऐसी अभिलाखा अब, करूं जोरि भाखा जिनपारसपुरानकी ॥ २२ ॥ आगै जैनग्रंथन के करता कवींद्र भये, करी देवभाषा महाबुद्धिफल लीनो है। अच्छरमिताई तथा अर्थकी गंभीरताई, पदललिताई जहां आई रीति तीनों हैं ॥ कालके प्रभाव तिन ग्रंथनके पाठी अब, दीसत अलप ऐसौ आयो दिन हीनो है। तातैं

सरस्वती भवन

इह समै जोग पढ़ें बालबुद्धि लोग, पारसपुरान पाठ भाषाबद्ध कीनो है ॥२३॥ दोहा—शक्तिभक्तिबल कविनपै, जिनगुन बरनैं जाहिं ॥ मैं अब बरनों भक्ति-वश, शक्तिमूल मुझ नाहिं ॥ २४ ॥ बरनौं पूरवकथित क्रम, ग्रंथअर्थ अवधार। सुगमरूप संछेपसों, सुनों सबहि नरनार ॥ २५ ॥ चौपाई—मगधदेश देशन परधान। राजगृही नगरी शुभथान ॥ राज करै श्रेणिक भूपाल। नीतवंत नृप पुण्यविशाल ॥ २६ ॥ छायक सम्यकदरशन सार। रूप शील सबगुन आधार ॥ तिनके घर अन्तेवर घना। पटरानी रानी चेलना ॥ २७ ॥ जाके गुन वरनत बहु भाय। बिरिया लगै कथा बढ़ि जाय ॥ एक दिना निज सभा नरेश। निवसै जैसे सुरग सुरेश ॥ २८ ॥ रोमांचित बनपालक ताम। आय राय प्रति कियो प्रनाम ॥ छह ऋतुके फल-फूल अनूप। आगें धरे अनूपम रूप ॥ २९ ॥ हाथ जोर विनवै वनपाल। विपुलाचल पर्वतके भाल ॥ वर्द्धमान तीर्थंकर आप। आये राजन पुण्यप्रताप ॥ ३० ॥ महिमा कछु वरनी नहिं जाय। इन्द्रादिक सेवैं सब पाय ॥ समोसरनसंपतिकी कथा। मोपै कही जाय किमि तथा ॥ ३१ ॥ माली बचन सुने सुखदाय। हरष्यों राजा अङ्ग न माय ॥ दीने भूषन वसन उतार। वनमाली लीने सिरधार ॥ ३२ ॥ सात पैंड़ गिरि-सम्मुख जाय। कियो परोच्छविनय नरराय ॥ आनंदभेरि नगरमैं दई। सबहीको दर्शनरुचि भई ॥ ३३ ॥ चल्यो संग पुरजन समुदाय। बंदे वर्द्धमान जिनराय ॥ लोकोत्तर लछमी अवलोक। गये सकल भूपतिके शोक ॥ ३४ ॥ थुति आरम्भ करी बहुभाय। बार-बार भुवि सीस नवाय ॥ गौतम गुरु पूजे कर जोरि। नरकोठे बैठ्यो मद छोरि ॥ ३५ ॥ कियों प्रश्न श्रेणिक बड़ भूप। प्रभु पारस निजकथा अनूप ॥ जाके सुनत पाप छय होय। कहिये देव कृपा करि सोय ॥ ३६ ॥ तब गनधर बोले हितराज। जोग प्रश्न कीनों नरराज ॥ सुन पुनीत पारस निज कथा। सफल होय मानुषभव यथा ॥ ३७ ॥ दोहा—इहि विधि जो मगदेश प्रति, कह्यो चरित गनराज ॥ ताही क्रम आये कहत, आचारज परकाज ॥ ३८ ॥ तिनहीके अनुसार अब कहूं किमपि विसतार ॥ जैनकथा कलपित नहीं, यह जानो निरधार ॥ ३९ ॥ जैनवचनवारिधि अगम, पानी अर्थ अनूप ॥ मतिभाजन भर-भर लिये यह निज आगमरूप ॥ ४० ॥

* इति पीठिका *

## अथ प्रथमोऽधिकारः

चौपाई—जंबूदीप दिपै यह सार। सूरजमंडलकी उनहार ॥ मध्य सुमेरु-कर्णिकाभास, बने क्षेत्र दल दीरघ जास ॥ ४१ ॥ तारागन मकरन्द मनोग। सुरनरसंग भ्रमर कुल योग ॥ लवणसमुद्र सरोवरथान। दीप किधौं यह कमल महान ॥ ४२ ॥ लक्ष महायोजन बिस्तार। बसै विविध रचना आधार ॥ दक्षिण भरत धनुष संठान। पर्वत फणच नदीजुग बान ॥ ४३ ॥ मानो सागर प्रति अनुमान। तानत तीर छार जल जान ॥ ऐसी भांति विराजत खेत। छहों खंढ मंडित छबि देत ॥ ४४ ॥ पांच मलेच्छ बसैं तामाहिं। धर्म कर्म कछु जानै नाहिं ॥ उत्तम आरजखंडमझार। देश सुरम्य बसै मनहार ॥ ४५ ॥ जनकुल जहां रहैं बहु भांति। पास पास सोहैं पुरपांति ॥ सरवर नदी शैल उद्यान। वन उपवनसों शोभामान ॥ ४६ ॥ तहां नगर पोदनपुर नाम। मानो भूमितिलक अभिराम ॥ देवलोककी उपमा धरै। सब ही विधि देखत मनहरै ॥ ४७ ॥ दोहा—तुंग कोट खाई सजल, सघन बाग गृहपांति ॥ चौपथ चौक बजारसों, सोहै पुर बहुभांति ॥ ४८ ॥ ठाम ठाम गोपुर लसैं, बापी सरवर कूप। किधौं स्वर्गने भूमिको' भेजी भेंट अनूप ॥ ४९ ॥ चौपाई—जैनी प्रजा जहां परवीन। बसै दानपूजाव्रतलीन ॥ जैन भवन ऊंचे अति बने। शिखर धुजासों शोभित घने ॥ ५० ॥ इहि विधि पुरशोभा अधिकार। वरनन करत लगै बहुबार ॥ राज करैं राजा अरविंद। सोहै मानो स्वर्गसुरिंद ॥ ५१ ॥ पालै प्रजा कुमति जिन दली। नीतिबेलमंडित भुजबली ॥ दयाधाम सज्जन गंभीर। गुनरागी त्यागी रनधीर ॥ ५२ ॥ तिस भूपतिकै विप्र सुजान। विश्वभूति मंत्री बुधिमान ॥ ताकी तिया अनूधर सती। रूपशील-गुण-लक्षणवती ॥ ५३ ॥ दोय पुत्र तिनके अवअरे। पापपुन्यको पटतर धरे ॥ जेठो नंदन कमठ कुपूत। दूजो पुत्र सुधी मरुभूत ॥५४॥ दोहा---जेठो मतिहेठो कुटिल, लघुसुत सरल स्वभाव। विष अम्रत उपजे जुगल, विप्र जलधिके जाव ॥ ५५ ॥ बड़े पुत्रने भारजा व्याही बरुणा नाम ॥ लघुने बरी विसुन्दरी, रूपवंति अभिराम ॥ ५६ ॥ चौपाई—यों सुख निवसैं बांधव दोय। निज निज टेव न टारैं कोय ॥ वक्र चाल विषधर नहिं तजै। हंस वक्रता भूल न भजै ॥ ५७ ॥ दोहा— उपजे एकहि गर्भसों, सज्जन

दुर्जन येह लोह कवच रक्षा करै, खाँडो खंडै देह ॥ ५८ ॥ चौपाई- -अति सज्जन मरुभूत कुमार । नीति शास्त्रको जाननहार ॥ सबको इष्ट सकलगुणगेह । राजा प्रजा करैं सब नेह ॥ ५९ ॥ एक दिना भूपति मंत्रीश । स्वेत बाल देखो निज शीश उपज्यो विप्र हिये वैराग । जान्यो सब जग अथिर सुहाग ॥६१॥ दोहा--- जरा मौतकी लघु बहिन, यामैं संशय नाहिं ॥ तौ भी सुहित न चिंतवैं, बडी भूल जगमाहिं ॥ ६२ ॥ चौपाई---यह विचार मंत्री मनमाहिं । निज सुत सौंपि रायकी बांहिं ॥ सुगुरु साखि जिन चारित लियो । वनोवास आतमहित कियो ॥६३॥ अब मरुभूत विप्रसुखकरै । अहनिश नीतिपंथ पग धरै ॥ राजा प्रीति करै बहु भाय । सोभ प्रकृति सबको सुखदाय ॥६४॥ एक समय आपन अरिविंद । मंत्री सेनासहित नरिन्द ॥ राय ब्रजवीरजपर चढे क्रोधभावउरमें अतिबढ़े ॥६५॥ पीछे कमठ निरंकुश होय । लग्यो अनीति करन शठ सोय ॥ जोमन आवेसोहठ गहै । मैं राजा सबसोंइमकहै ॥६६॥ एक दिना निजभ्रातानारि । भूषणभूषितरूप निहारि ॥ रागअंध अति विहवल भयो । तीच्छन कामताप उर तयो ॥ ६७ ॥ महा मलिन उर बसैं कुभाव । दुर्गतिगामी जीव सुभाव ॥ पुत्री सम लघुभ्राता-नारि । तहां कुदिष्ट धरी अविचारि ॥ ६८ ॥ दोहा- -पाप कर्मको डर नहीं, नहीं लोककी लाज ॥ कामी जनकी रीति यह, धिक तिस जन्म अकाज ॥ कामी काज अकाजमैं, होहैं अंधअंधेव ॥ मदनमत्त मदमत्तसम, जरोजरो य टेव ॥७०॥ पिता नीर परसै नहीं, दूर रहै रवि यार ॥ ता अंबुजमें मूबु अलि, उरझि मरै अविचार ॥ ७१ ॥ त्यों ही कुविसनरत पुरुष, होय अवशि अविवेक ॥ हितअनहित सोचैं नहीं, हिये विसनकी टेक ॥ ७२ ॥ चौपाई - बनमें सघनलतागृह जहां । गयो कमठ कामातुर तहां ॥ बढ़ी वेदना कलनहिं परै । छिन छिन काम विथा दुख करै ॥ ७३॥ कमठ सखा कलहंस विशेख । पूछत भयोदुखी तिस देख ॥ कौन व्याधि उपजी तुम अंग । अतिव्याकुल दीखे सर्वंग ॥ ७५ ॥ तब तिन लाज छोर सब सही । मनकी बात मित्रसों कही ॥ सुन कलहंस कथा विपरीति । शिक्षा वचन कहे करि प्रीति ॥ ७६ ॥ अति अयोग कारज यह बीर । सो तुम चित्यो साहसि धीर ॥ परनारीसम पाप न आन । परभवदुख इहि भव जसहान ॥ ७७॥ इस ही वंछासों अघ भरे । रावण आदि नरकमें परे ॥ जगमें जेठ पितासम तूल

बात कहत लाजै नहिं मूल ॥ ७८ ॥ तातें यह हठ भूल न करौ । सुहित सीख मेरी मन धरौ ॥ लोकनिंद कारज यह जान । धर्मनिंद निहचै उर आन ॥ ७९ ॥ दोहा---यों कलहंस अनेक विधि, दई सीख सुखदैन ॥ ते सब कमठकुशीलप्रति भरो विफलहित वैन ॥ ८० ॥ आयुहीन नरको यथा, औषधि लगै न लेश ॥ त्यों ही रागी पुरुष प्रति, वृथा धर्म उपदेश ॥ ८१ ॥ बोल्यो तब कामी कमठ, सुनो मित्र निरधार ॥ जो नहिं मिलै विसुंदरी, तो मुझमरन विचार ॥ ८२ ॥ देख कमठकी अधिक हठ, कुमति करी कलहंस ॥ जाय कहै ता नारसों झूठ वचन अपशंस । ८ ॥ अडिल्ल छंद ॥ सुन विसुंदरी आज कमठ बनमें दुखी । तू ताकी सुध लेहु होय जिहिं विधि सुखी ॥ सुनते ही सतभाव गई बनमें तहां । निवसै कर परपंच कमठ कपटी जहां ॥ ८४ ॥ दोहा---छलबल कर भीतर लई, बनिता गई अजान । राग वचन भाखे विविध, दुराचारकी खान ॥ ८५ ॥ चाल छंद--गज मातो कमठ कलंकी । अघसों मनसा नहिं शंकी ॥ भावज वनकरनी रंजो । जिम शीतल रोवर भंजो ॥८६॥ रिपु जीत विजयजस पायो । अरविंद नृपति घर आयो ॥ जे कर्म कमठने कीने । राजा सबते सुन लीने ॥ ८७ ॥ मंत्री मरुभूत बुलायो । ताको सब भेद सुनायो ॥ कहु विप्र सुधी क्या कीजै । क्या दण्ड इसे अब दीजै ॥ ८८ ॥ दुज कहै सरल परिनामी । अपराध छिमाकर स्वामी ॥ जो एक दोष सुन लीजै । ताको प्रभु दण्ड न दीजै ॥ ८९ ॥ तब भूप कहै सुन भाई । जो निग्रहयोग अन्याई ॥ तापै करुना किम होहै । यह न्याय नृपति नहिं सोहै ॥ ९० ॥ तातैं गृह गच्छसयाने । मत खेद हिये कछु आने । ऐसैं कह विप्र पठायो । तिस पीछैं कमठ बुलायो ॥ अति निन्दो नीच कुकर्मी, जानो निरधार अधर्मी ॥ राजा अति ही रिस कीनी । सिर मुण्ड दण्ड बहु दीनी ॥ मुखकै कालोंस लगाई । खर रोप्यों पीर न आई ॥ फिर सारे नगर फिरायो, प्रति बीथी ढोल बजायो ॥ ९३ ॥ इस भांति कमठकी ख्वारी । देखैं सब ही नर नारी ॥ पुरवासी लोक धिकारैं । बालक मिलि कंकर मारैं ॥९४॥ यों दण्ड दियो अति भारी । फिर दीनो देश निकारी ॥ जो दीरघ पाप कमाये । ततकाल उदै बहु आये ॥ ९५ ॥ दोहा—इहि विधि फूल्यो पाप तरु, देख्यो सब संसार । आगे फल है नरक फल, धिक दुर्विसन असार ॥ ९६ ॥ चौपाई-

पुस्तकालय क्रमांक 307

महादण्ड भूपति जब दयो। कमठ कुशील दुखी अति भयो ॥ बिलखत वदन गयो चल तहां। भूताचलपर्वत है जहां ॥ ९७ ॥ रहै तहां तापसो समुदाय। ज्ञानविना सब सोखैं काय ॥ केई रहे अधोमुख झूल। धूंवां पान करैं अघभूल ॥ ९८॥ केई ऊर्धमुखी आघोर। देखे सबै गगनको ओर। केई निवसैं ऊरध बाहिं दुविध दयासों परचै नाहिं ॥ ९९ ॥ केई पंच अग्नि झल सहैं। केई सदा मौन मुख रहैं ॥ केई बैठे भस्म चढ़ाय। केई मृगछाला तन लाय ॥ १०० ॥ नख बढ़ाय केई दुख भरैं। केई जटा भार सिर धरैं ॥ यों अज्ञान तपलीन मलीन। करैं खेद परमारथहीन ॥ तिनमें एक तापसी नाथ। प्रनम्यो ताहि धरे सिर हाथ ॥ तिन अशीस दे आदर कियो। दीक्षा दान कमठ तहं लियो ॥ करन लगो तब कायकलेश। उर वैराग विवेक न लेश ॥ ठाढ़ो भयो शिला कर लिये। किधौं फणी फण ऊंचो किये। ३। मंत्री बंधवकी सुधि पाय। राजा सों विनयो इमि आय। भूताचलपर्वतकी ओर। भ्राता कमठ करै तप घोर। ४। जो नरनायक आज्ञा होय, देखूं जाय सहोदर सोय। पूछे नृपति कौन तप करै, भो प्रभु तापसके व्रत धरै ॥ एक वार मिलि आऊं ताहि, राय कहै मन्त्री मत जाहि। खलसों मिले कहा सुखहोय, विषधर भेंटे लाभ न कोय ॥ बरज्यो रह्यो न बारम्बार, महा सरलचित विप्रकुमार। भ्रातमोहवश उद्यम कियो, कोमल होत सुजनको हियो ॥ दोहा—दुर्जन दूखित संतको, सरल सुभाव न जाय। दर्पणकी छवि छार सों, अधिकहि उज्जल थाय ॥ सज्जन टरै न टेवसों, जो दुर्जन दुख देय। चन्दन कटत कुठार मुख, अवशि सुवास करेय ॥ चौपाई—गयो विप्र एकाकी तहां, कमठ कठोर करै तप जहां। विनयवंत हो विनयो तास, महा सरलचायक सुखभास ॥ भो बंधव तो उर गम्भीर, यह अपराध छिमाकर बीर। मैं तो राय बहुत बीनयो, मानो नाहिं तुमैं दुख दयो ॥ होनहारसों कहा बसाय, तुम बिन मोहि कछू न सुहाय। यों कह पांयन लागो जाम, कोप्यो अधिक कमठदुठ ताम ॥ दोहा—दुर्जन और शलेषमा, ये समान जगमाहिं। ज्यों ज्यों मधुरे दीजिये, त्यों त्यों कोप कराहिं ॥ शिला सहोदर शीशपै, डारी वज्र समान। पीर न आई पिशुनको, धिक दुर्जनकी बान ॥ दुर्जनको विश्वास जो, करि हैं नर अविचार। ते मन्त्री

मरुभूत सम, दुख पावैं निरधार ॥ दुर्जन जनकी प्रीत सों, कहो कैसे सुख होय । विषधर पोषि पियूषकी, प्रापति सुनी न लोय ॥ मंत्रीतनतैं रुधिरकी उछली छींट कराल । दुर्जनहित तरु तैं किधौं, निकसीं कोंपल लाल ॥ इहि-विध पापी कमठने, हत्या करी महान । तब तपसी मिलि नीच नर, काढ दियो दुठ जान ॥ चौपाई—फेरि दुष्ट भीलनतैंमिल्यो, भयो चोर घर मूसन हिल्यो । पापकरत कर आयो जबै, बांधि बुरी विधि माख्यो तबै ॥ दोहा—जैसी करनी आचरै, तैसो ही फल होय । इन्द्रायनकी बेलिकै, आंब न लागै कोय ॥ चौपाई—एक दिना अरविन्द नरिन्द पूंछे कर जुग जोरि मुनिन्द । भो प्रभु मुझ मन्त्री मरुभूत, क्यों नहिं आयो ब्राह्मनपूत ॥ यह सुनि अवधिवंत मुनिराय । सब बिरतंत कह्यो समुझाय । राजा मन अति भयो मलीन, हा मन्त्री सज्जनता लीन ॥ बरजात गयो दुष्टके पास, कुमरण लह्यो सह्यो बहु त्रास । होनहार सोई विधि होय, ताहि मिटाय सकै नहिं कोय ॥ यों विचारि मनशोक मिटाय, साधु पूजि घर आये राय । यह सुनि दुष्टसंग परिहरो, सुखदायक सतसंगति करो ॥ छप्पय—तपे तवापर आय, स्वातिजलबून्द विनट्ठी, कमलपत्र पर संग वही मोतीसम दिट्ठी । सागरसीप समीप, भयो मुक्ताफल सोई । संगतको परभाव, प्रगट देखो सब कोई । यों नीच संग तैं नीच फल, मध्यमतैं मध्यम सही । उत्तमसंयोगतैं जीवको, उत्तमफल प्रापति कही ॥

इति श्रीपार्श्वपुराण भाषायां मरुभूतभववर्णनं नाम प्रथमोधिकार ॥१॥

## अथ द्वितीयोऽधिकारः ।

दोहा—अश्वसेनकुलचन्द्रमा, बामाउरअवतार ॥ बंदों पारसपदकमल, भविजनअलि आधार ॥ पद्धड़ी छन्द—इस भांति तजे मरुभूति प्रान । अब सुनो कथा आगे सुजान । अतिसघन सल्लकी बन विशाल, जहं तरुवर तुंग तमाल ताल । बहु बेलजाल छाये निकुंज, कहिं सूखि परे तिन पत्रपुंज कहिं सिकताथल कहिं शुद्ध भूमि, कहिं कपि तरुडारन रहे झूमि । कहिं सजल-थान दहि गिरि उतंग, कहिं रीछ रोझ बिछरें कुरंग । तिस थानक आरत ध्यान दोष, उपज्यो वनहस्ती वज्रघोष ॥ अति उन्नत मस्तक शिखर जास, मदजीवन झरना झरहिं तास । दीसै तमवरन विशाल देह, मानो गिरिजंगम दुरस येह ।

जाको तन नख शिख छोभवंत, मुसलोपम दीरघ धवल दंत। मदभीजे झलकैं जुगल गंड, छिन छिनसों फेरै सुंड दंड। जो वरुना नामैं कमठ नार, पोदनपुर निवसै निराधार। सो मरि तिहिं हथनी हुई आन, निस संग रमै नित रंजमान कबही बहु खंडैं बिरछबेलि, कबही रजरंजित करहिं केलि। कबही सरवरमें तिरहिं जाय, कबही जल छिरकैं मत्तकाय। कबही मुखपंकज तोरि देय, कबही दह कादो अंग लेय। दोहा—यों सुछंद क्रीड़ा करै, वरुना हथनी सत्थ। वन निवसै वारण बली, मारणशील समत्थ ॥ १० ॥ चौपाई—एक दिवस अरविंद नरेश, ज्यों विमानमें स्वर्ग सुरेश। यों निजमहलन निवसै भूप, देखो बादल एक अनूप तुंग शिखर अति उज्जल कहा, मानो मन्दिर ही बनि रहा। "नरवै निरखि चिंतवै ताम, ऐसो ही करिये जिनधाम।" लिखनहेत कागद कर लियो, इतने सो सरूप मिटि गयो। तब भूपति उर करै विचार, जगतरीति सब अथिर असार। तन धन राज संपदा सबै, योंही विनशि जायगी अबै। मोहमत्त प्रानी हठ गहै, अथिर वस्तुको थिर सरदहै। जो पररूप पदारथजाति, ते अपने मानै दिनराति। भोगभाव सब दुखके हेत, तिनहीको जानैं सुखखेत। ज्यों माचन कोदों परभाव जाय जथारथ दृष्टि स्वभाव। समझै पुरुष औरकी और, त्यों ही जगजीवनकी दौर। पुत्र कलत्र मित्रजन जेह, स्वारथ लगे सगे सब येह। सुपनसरूप सकल संभोग, निजहितहेत बिलंब न जोग। यों भूपति वैराग विचारि, डारी पोट परिग्रह भारि। राजसमाज पुत्रको दियो, सुगुरुसाखि नृप चारित लियो। धरी दिगंबरमुद्रा सार, करै उचित आहार विहार। बारहविधि दुद्धर तपलीन, छहोंकायपीहर परवीन। एकसमय अरविंद मुनीश, सारथवाहीके संग ईश। शिखर सुमेरु बंदनाहेत, चले ईरज्यापथ पग देत ॥ २० ॥ गये सल्लकी वनमें लंघ, तहां जाय उतरयो सब संघ। निजसिज्झायसमय मन लाय, प्रतिमायोग दियो मुनिराय तावत वज्रघोष गजराज, आयो कोपि कालसम गाज। सकलसंगमें खलबल परी भाजे लोग कूकि धुनि करी। गजके धकै परयो जो कोय, सो प्राणी पहुंच्यो परलोय। मारे तुरग तिसाये गैल, मारे भारगहारे बैल। मारे भूखे करहा खरे, मारे जन भाजे भय भरे। इहिविधि हाथी करत संघार, मुनि सनमुख आयो किलकार। अति विकराल रोषविष भरो, मुनि मारनको उद्यम करो। साधुसु-

दर्शन मेरु समान सिरीवच्छ लच्छन उर थान । सो सुचिन्ह गज देख्यो जाम, जाती सुमरन उपज्यो ताम । ततखिन शाँत भयौ गजईश, मुनिके चरन धर्यो निज शीश । तब मुनि चवै मधुर धुनि महा, रे गयंद यह कीनो कहा । हिंसा करम परम अघहेत, हिंसा दुरगतिके दुख देत । हिंसासों भमिये संसार, हिंसा निजपरको दुखकार । तैं ये जीव विध्वंसे आय, पातकतैं न डरो गजराय । देखि देखि अघके फल कौन, लई विप्रतैं कुंजर जौन । तू मंत्री मरुभूति सुजान, मैं अरविंद क्यों न पहिचान । धर्मविमुख आरतके दोष, पशु परजाय लई दुख-कोष । अब गजपति ये भाव निवारि, धर्मभावना हिरदे धारि ॥ ३० ॥ सम्यक-दरशन पूरब जान, पालि अणुव्रत अब लौं प्रान । सुन करिंद उर कोमल थयो । किये पापनिज निंदन भयो । दोहा—फिर गुरु पायन सिर धरों, धर्म गहन उर हेत । तब सत्यारथ धर्म विधि, कही साधु समचेत । चौपाई - सुन हस्ती शास-न अनुकूल, सकल धरमको दर्शनमूल । सब गुणरत्नकोष यह जान, मुक्ति धौर हरघुर सोपान । तातैं यह सबहीको सार, या विन सब आचरन असार । जो सर दहै औरकी और, सो मिथ्यातभावकी दौर । दोष अठारह वरजित देव, दुविध संगत्यागी गुरु एव । हिंसावरजित धरम अनूप, यह सरधा समकितको रूप । दोहा— शंकादिक दूषन बिना, आठों अंग समेत । मोखविरछिअंकूर यह, उपजै भविउरखेत । चौपाई - अंगहीन दर्शन जगमाहिं । भवदुखमेटन समरथ नाहिं ॥ अक्षरऊनमंत्र जो होय । विषवाधा मेटे नहिं सोय ॥ तातैं यह निरनय उर आन यह हिरदै सम्यक सरधान ॥ पंच उदंबर तीन मकार । इन को तजि बारह व्रत धार ॥ इहि विधि गुरु दीनो उपदेश । वारण हरषित भयो विशेष ॥ सुगुरुवचन सब हिरदै धरै । सम्यकपूरव व्रत आदरै ॥ ४० ॥ बार बार भूविसों सिर लाय । मुनिवर चरन नमै गजराय ॥ चले साधु तिहिं हित उपजाय । तब हाथी आयो पहुंचाय ॥ दोहा - करि उपगार मुनीश तहं, कीनो सुविधि विहार । वन निवसै गजपति व्रती, सुगुरु सीख उर धार ॥ चालछंद—अब हस्ती संजम साधै । त्रस जीव न भूल विराधै ॥ समभाव छिमा उर आनै । अरि मित्र बराबर जाने ॥ काया कमि इंद्री दंडे । साहस धरि प्रोषध मंडै ॥ सूखे तृण पल्लव भच्छै ॥ परमर्दित मारग गच्छै ॥ हाथीगन डोह्यो पानी । सो पीवै गजपति ज्ञानी ॥ देखे विन पांव

न राखै। तन पानी पंक न नाखै । निजशील कभी नहिं खोवै । हथनीदिशि मूल न जोवै ॥ उपसर्ग सहै अति भारी । दुरध्यान तजैं दुखकारी ॥ अधके भय अंग न हालै । दिढ़ धीर प्रतिज्ञा पालै ॥ चिरलों दुद्धर तप कीनो । बलहीन भयो तन छीनो ॥ परमेष्टि परमपद ध्यावै । ऐसें गज काल गमावै ॥ एकै दिन अधिक तिसायो । तब वेगवती तट आयो ॥ जल पीवन उद्यम कीधो । कादोद्रह कुंजर बीधो ॥ निहचै जब मरन बिचारो । सन्यास सुधी तब धारो ॥ सो कमठ कलंकी मूवो । ता बन कुरकट अहि हूवो ॥ तिन आय डस्यो गज ज्ञाता । यह बैर महादुखदाता ॥ ५० ॥

दोहा—मरन कियो गजराज तब, राखे निर्मल भाव । सुरग बारवें सुर भयो, देख धर्म प्रभाव ॥ चौपाई—तहां स्वयंप्रभनाम विमान, शशिप्रभदेव भयो तिहिं थान । अवधि जोड़ सब जान्यो देव, व्रतको फल पूरबभव भेव ॥ जिनशासन शंसो बहुभाय, धर्मविषै दिढ़ता मन लाय । सदा सासते श्री-जिनधाम, पूजा करी तहां अभिराम ॥ महामेरु नन्दीसुर आदि, पूजे तहं जिन-बिम्ब अनादि । कल्याणक पूजा विस्तरै, पुन्य भंडार देव यों भरै ॥ सोलह सागर आयु प्रमान, साढ़े तीन हाथ तन जान । सोलह सहस वर्ष जब जाहिं, अशन चाह उपजै उरमाहिं ॥ अनुपम अमृतमय आहार, मनसों भुंजै देव-कुमार । आठदुगुन पख बीतैं जास, तब सो लेय सुगंध उसांस ॥ अवधि चतुर्थ अवनि परजंत, यही विक्रियाबल बिरतन्त । अवधिछेत्र जावत परमान, होय विक्रिया तावत मान ॥

दोहा—वदनचन्द्र उपमा धरै, विकसित बारिज नैन । अंग-अङ्ग भूषण लसें; सब बानक सुखदैन ॥ सुन्दर तन सुन्दर वचन, सुन्दर स्वर्गनिवास । सुन्दर वनिता मण्डली, सुन्दर सुरगन दास ॥ अणिमा महिमा आदि दे, आठ ऋद्धि फल पाय । सुर सुछंदक्रीड़ा करै, जो मन बरतै आय ॥ ६० ॥ सुनत गीत संगीत धुनि, निरखत निरत रसाल । सुखसागरमें मगन सुर, जात न जानै काल ॥ लोकोत्तम सब सम्पदा, अनुपम इन्द्री भोग । सुफल फलो तप-कल्पतरु, मिलो सकल सुखजोग ॥ जैवंतो बरतो सदा, जैनधर्म जगमाहिं । जाके सेवत दुख समुद, पशुपंछी तिर जाहिं ॥ छन्द—इसही जम्बूदीप, पूर्व

विदेहमझारे । पद्मुप कलावती देश, विकसत नैन निहारे ॥ तहां विजयारध नाम, सोहै शैल रवानो । उज्जल वरन विशाल, रूपमई गिरवानो ॥ जोजन परम पचास, भूमिविषै चौड़ाई । तुंग पचीस प्रमाण, शोभा कही न जाई ॥ चौथाई भूमांझ, नौ सिर कूट विराजैं । सिद्धिशिखर जिनधाम मणि प्रतिमा तहां छाजैं ॥ उत्तम दच्छिन ओर, श्रेणी दोय जहां हैं । दोय गुफा गिर हेठ, अति अन्धियार तहां हैं ॥ तापर स्वर्गसमान, लोकोत्तम पुर सोहै । बापी कूप तलाव, मंडित सुर मनमोहै ॥ विद्युतगति भूपाल, न्याय प्रजा प्रतिपालै । नीत निपुण धर्मज्ञ, संत सुमारग चालै ॥ ७० ॥ विद्युत माला नांव, ता घर नार सयानी । मानो मनमथ जोग आय मिली रतिरानी ॥ तिनकै सो सुर आय, पुत्र भयो बड़भागी, अग्निवेग तसु नाम अति सुन्दर सौभागी ॥ सोमप्रकृति परवीन, सकल सुलच्छनधारी । जिनपदभक्ति पुनीत, सबहीको सुखकारी ॥ राजसम्पदा भोग, भुंजत पुन्य नियोगै, एक दिना इन साधु, भेंट भाग संयोगै ॥ श्रवन सुन्यो उपदेश, भर जोवन बैराग्यो । आसन भव्य कुमार, संजमसों अनुराग्यो ॥ तजि परिग्रह गुरुसाख, पंचमहाव्रत लीने, दुद्धर तप आराध, रागादिक कृष कीने ॥ छीन किये परमाद, विचरैं एक विहारी । बारह अंग समुद्र, पार भयो श्रुतधारी ॥ एक दिवस धरि योग, हिमगिरिकंदर माहीं निवसै आतमलीन । बाहरकी सुधि नाहीं ॥ दो०-कुर्कटनामा कमठचर, दुष्टनाग दुखदाय ॥ सो मरि पंचम नरकमें । पद्यो पाप वशजाय ॥ छेदन भेदन आदि बहु । तहां वेदना घोर ॥ सहस जीभ सों बरनये । तऊ न आवै ओर ॥ ८० ॥ ऐसे दुखमें कमठ जिय । कीनी पूरन आव ॥ सत्रह सागर भुगतकै । निकसो क्रूर सुभाव ॥ चौपाई—बैर भाव उरतैं नहि टद्यो । फेरि आय अजगर अवतद्यो । संसकारवश आयो तहां । हिमगिरिगुफा मुनीश्वर जहां ॥ गिले साधु संजमधर धीर । समभावनतैं तज्यो शरीर ॥ लीनो स्वर्ग सोलवें बास । जो नित निरुपम भोग निवास ॥ जन्म सेजतें जोवन पाय । उठो अमर सम्पूरण काय ॥ देख सम्पदा विस्मय भयो । अवधि होत संशय सब गयो ॥ पूजाकरी जिनालय जाय । भाव भक्ति रोमांचित काय पूरव संचित पुन्यसंयोग । करै तहां सुर वांछित भोग ॥ गये वर्ष बाईस हजार । भोजन भुंजै मनसाहार ॥

तावत मान पक्ष जब जाय। तब ऊसांसो दिशि महाकाय ॥ देखै पंचम भूपर जन्त। अवधिज्ञानबल मूरतिवंत ॥ तितने मान विक्रिया करै। गमनागमन हिये जब धरै ॥ तीन हाथ अति सुन्दर काय। लेश्या शुकल महा सुखदाय। थिति सागर बाईस विशाल। इहिविधि बीतै सुखमें काल ॥ दोहा-आदि अन्त जिस धर्मसों, सुखी होंय सब जीव। ताको तन मन वचनकर, हे नर सेव सदीव ॥ ८६ ॥

इति श्रीमत्पार्श्वनाथपुराण भाषायां गजस्वर्गगमनविद्याधरभवविद्युत्प्रभमेघ भववर्णनं नाम द्वितीयोऽधिकारः

## अथ तृतीयोधिऽकारः

दोहा—अश्वसेनकुलकमल रवि, वामाकुंवर कृपाल ॥ बंदौं पारसचरन युग, सरनागत प्रतिपाल ॥ चौपाई—जम्बूदीप बसै बहु फेर। जाके मध्य सुदर्शन मेर ॥ कंचनमणिमय अतुल सुहाग। ता पर्वतके पच्छिम भाग ॥ अपर विदेह विराजै खेत। सो नित चौथे काल समेत ॥ पदपद जहां दीपैं जिन-धाम। नहीं कुदेवनको विश्राम ॥ जैनजतीजन दीखैं सोय। नहीं कुलिंगी दीखै कोय ॥ उत्तम धर्म सदा थिर रहै। हिंसा धर्म प्रकाश न लहै ॥ तीनों वरण बसैं जहां लोय। ब्राह्मणवरण कभी नहिं होय ॥ तामें पद्मदेश अभि-राम। सोहै नगर अश्वपुरनाम ॥ तहां वज्रवीरज भूपाल। न्यायै प्रजा करै प्रति-पाल ॥ गुण निवास सूरज सम दिपै। आन भूप उड़ गणछबि छिपै ॥ विजया नामैं नरपति नारी। रूपवंत रतिकी उनहारी ॥ पटरानी सबमें परधान, पूरब पुन्यउदय गुणखान ॥ एक समय निशि पच्छिमजाम। पंच सुपन देखे अभि-राम ॥ मेरु दिवाकर चन्द्र विमान। सजल सरोवर सिन्धु समान ॥ प्रात भये आई पिय पास। विकसत लोचन हिये हुलास ॥ रात सुपन अवलोके जेह। नृप आगैं परकाशे तेह ॥ तब नरिन्द्र बोले बिकसाय। सुन्दर वचन श्रवन सुखदाय ॥ सुनि रानी इनको फल जोय। पुत्र प्रधान तुम्हारे होय ॥१०॥ ऐसे वच पियके अवधार। अति आनन्द भयो नृपनार। अचुत स्वर्ग तैं सो सुर चयो। वज्रनाभि नामा सुत भयो ॥ चौसठ लच्छन लच्छित काय। पुन्ययोग जिमि उतरो आय ॥ जन्ममहोत्सव राजा कियो। जिन पूजे याचक धन दियो ॥

बढ़ै बाल जिमि बालक चन्द। सुजनलोकलोचनसुखकन्द ॥ क्रम-क्रमसों शिशु भयो कुमार। पढ़ लीनो विद्या सब सार ॥ जोवनवंत कुमर जब भयो। निर्मल नीति पंथ पग ठयो ॥ रूप तेज बलबुद्धि विज्ञान। सकल सार गुण रत्ननिधान। कीनी पिता व्याह विधि योग। राजसुता बहु बरीं मनोग ॥ क्रम-कर कुमर पितापद पाय। राजा करै थुति करिय न जाय ॥ पुन्यजोग आयुध-गृह जहां, चक्ररतनवर उपज्यो तहां ॥ छहों खंडवरती भूपाल, वश कीने नाये निजभाल। देवदैत्य विद्याधर नये। नृप मलेच्छ सब सेवक भये ॥ बढ़ी सम्पदा पुन्य संयोग। इन्द्र समान करै सुखभोग ॥ दोहा—सम्पूरण सुख भोगवै, वज्रनाभि चक्रेश ॥ तिस विभूतिबल वरनऊ, यथाशक्ति लवलेश ॥ चौपाई—सहसबतीस सासते देश। धनकनकंचन भरे विशेष ॥ विपुल बाड़ वेढ़े चहुं-ओर। ते सब गांव छानवै कोर ॥ कोट कोट दरवाजे चार। ऐसे पुर छब्बीस हजार ॥ जिनको लगैं पांच सौ गांव। ते अटंब चउसहस सुठांव ॥२०॥ पर्वत और नदीके पेट, सोलह सहस कहे वेखेट। कर्वट नाम सहस चौवीस। केवल गिरिवर वेढ़े दीप ॥ पत्तन अड़तालीस हजार। रत्न जहां उपजैं अतिसार ॥ एक लाख दोणामुख वीर। सहस घाट सागरके तीर ॥ गिरि ऊपर संवाहन जान। चौदह सहस मनोहर थान। अट्ठाईश हजार अशेश। दुर्ग जहां रिपु को न प्रवेश ॥ उप समुद्रके मध्य महान। अन्तर दीप छपन परिमान ॥ रत्नाकर छब्बीस हजार। बहु विधि सार वस्तु भंडार ॥ रत्नकुक्ष सुन्दर सात से। रत्नधरा थानक जहं लसै ॥ इन पुरसों बस राजौ खरे। जैनधाम धरनी जनभरे ॥ बर गयंद चौरासीलाख। इतनेही रथ आगम साख ॥ तेज तुरंग अठारह कोर। जे बढ़ चलैं पवनतैं जोर ॥ पुनि चौरासी कोटि प्रमाण। पायक संघ बड़े बलवान ॥ सहस छानवै वनिता गेह। तिनको अब विवरन सुन लेह ॥ आरज खंड वसैं नरईश। तिनकी कन्या सहसबतीस ॥ इतनी ही अतिरूप रसाल। विद्याधर पुत्री गुणमाल ॥ पुनि मलेच्छ भूपनकी जान। राजकुमारी तावत मान ॥ नाटकगण बत्तीस हजार। चक्री नृपको सुखदातार ॥ आदि शरीर आदि संठान। पूर्व कथित तन लच्छन जान ॥ बहुविधि विंजनसहित मनोग। हेमवरन तन सहज निरोग ॥ ३० ॥ छहों खंड भूपति बलरास।

तिनसोंअधिक देहबल जास ॥ सहसबतीस चरनतल रमैं । मुकटबंध राजा नित नमैं । भूप मलेच्छ छोरि अभिमान । सहस आठारह मानै आन ॥ पुनि गणबद्ध बखानैं देव । सोलह सहस करैं नृप सेव ॥ कोटि थाल कंचननिर्मान । लाखकोटि हल सहित किसान ॥ नाना वरन गऊकुल भरे । तीन कोटि व्रज आगम थरै ।

दोहा—अब नवनिधिके नाम गुण, सुनो जथारथरूप । जैनी विन जानै नहीं, जिनको सहज स्वरूप ॥ चौपाई—प्रथम कालनिधि शुभ आकार, सो अनेक पुस्तकदातार । महाकालनिधि दूजी कही, याकी महिमा सुनियो सही ॥ असि मसि आदिक साधन जोग । सामिग्री सब देय मनोग ॥ तीजी निधि नैसर्प महान । नाना विधि भाजनकी खान ॥ पांडुक नाम चतुरथी होय । सब रसधान समप्पै सोय ॥ पद्म पंचमी सुक्रतखेत । वांछित वसन निरंतर देत ॥ मानव नाम छठी निधि जेह । आयुधजात जन्मभू तेह ॥ सप्तम सुभग पिंगला नाम । बहुभूषण आपै अभिराम ॥ शंखनिधान आठमी गनी । सब वाजित्र भूमिका बनी । सर्वरत्ननवमी निधि सार । सो नित सर्वरत्नभंडार ॥ दोहा—ये नौनिध चक्रेशकै, शकटाकृत संठान । आठचक्रसंजुक्त शुभ, चौखूंटी सब जान ॥ ४० ॥ जो जन आठ उतंग अति, नवजोजन विस्तार । बारह मित दीरघ सकल, बसैं गगन निरधार ॥ एक एकके सहसमित, रखवाले जखदेव । ये निधि नरपति पुन्यसों, सुखदायक स्वयमेव ॥ चौपाई—प्रथमसुदरशन चक्रपसत्थ । छहोखंडसाधन समरत्थ ॥ चंडवेग दिढ़ दंड दुतीय । जिसबल खुलै गुफा गिरिकीय ॥ चर्मरत्न सो तृतिय निबेद । महा वज्रमय नोर अभेद ॥ चतुरथ चूड़ामनि मनि रैन । अंधकार नाशक सुखदैन ॥ पंचमरत्न काँकिणी जान । चिंतामणि जाको अभिधान ॥ इन दोनोंतैं गुफामंझार । शशि सूरज लखिये निरधार ॥ सूरजप्रभ शुभछत्र महान, सो अति जगमगाय ज्यों भान । सोनंदक असि अधिक प्रचंड, डरै देखि बैरी बलवंड ॥ पुनि अजोध सेनापति सूर । जो दिगविजय करै बल भूर ॥ बुधनिधान विद्यागुणलीन ॥ थपित भद्रमुख नाम महंत । शिल्पकलाकोविद गुणवंत कामबृद्ध गृहपति विख्यात । सबगृह काज करै दिनरात ॥ ब्याल विजयगिरि अति अभिराम । तुरग तेज पवनंजय नाम ॥ वनिता नाम सुभद्रा कही । चूरै वज्र पानिसों सही ॥ महादेहबल धारै सोय । जा पटतर तिय अवर न कोय ॥ मुख्य-

रत्न यह चौदह जान । और रत्नको कौन प्रमान ॥ ५० ॥ दोहा— राजअंग चौदह रतन, विविधि भीति सुखकार ॥ जिनकी सुर सेवा करैं, पुन्यतरोवर डार ॥ चक्र छत्र असि दंड मणि, चर्म कांकणी नाम । सातरत्न निर्जीव यह, चक्रवर्तिके धाम ॥ सेनापति गृहपति थपित, प्रोहित नाग तुरंग । वनिता मिलि सातों रतन, ये सजीव सरवंग ॥ चक्र छत्र असि दंड ये उपजैं आयुधथान ॥ चर्म कांकणी मणिरतन, श्रीगृह उतपति जान ॥ गजतुरंग तिय तीन ये, रूपाचलतैं होत । चार रतन बाकी विमल, निजपुर लहैं उदोत ॥ चौपाई—मुख्य संपदाको विरतंत । आगै और सुनो मतिवंत ॥ सिंहबाहनी सेज मनोग । सिंहारूढ़ चक्रवै जोग ॥ आसन तुंग अनुत्तर नाम । माणिकजालजटित अभिराम ॥ अनुपम नामा चमर अनूप । गंगातरलरंगसरूप ॥ विद्युतिदुति मणि कुंडल जोट । छिपै और दुति जाकी ओट ॥ कवच अभेद अभेद मान । जामैं भिदै न वैरीवान ॥ विगमोचनी पादुका दोय । परपदसों विष मुंचै सोय ॥ अजितंजै रथ महारवन्न । जलपै थलवत करै गवन्न ॥ वज्रकांड चक्रीधर चाप । जाहि चढ़ावत नरपति आप वाण अमोघ जबै कर लेत । रणमें सदा विजय वर देत ॥ ६० ॥ विकट वज्रतुंडा अभिधान । शत्रुखंडनी शकती जान ॥ सिंहाटक बरछी विकराल । रत्नदंड लागी रिपुकाल ॥ लोहबाहनी तीखनछूरी । जिमि चमकै चपलादुति दुरी ॥ ये सब वस्तुजाति भूमाहिं । चक्री छूट और घर नाहिं ॥ दोहा—मनोवेग नामा कणय, ग्रंथन कह्यो विख्यात । खेटभूतमुख नामहै, दोनों आयुध जात ॥

चौपाई–आनंदन भेरी दश दोय । बारह जोजन लों धुनि होय ॥ वज्रघोष पुनि जिनको नाम । बारह पटह नृपतिके धाम ॥ वर गंभीरावर्त गरीश । शोभनरूप शंख चौवीस ॥ नानावरन धुजा रमनीय । अड़तालीस कोटमित कीय ॥ इत्यादिक बहुवस्तु अपार । वरनन करत न लहिये पार ॥ महलतनी रचना असमान । जिनमत कही सो लीजो जान ॥ दोहा— चक्री नृपकी संपदा, कहै कहां लों कोय ॥ पुन्यबेल पूरब बई, फली सांघणी सोय ॥ इहि विधि वज्रनाभि नरनाय । करै भोग चक्रीपद पाय ॥ धर्मध्यान अहनिशि आचरै । निर्मल नीतिपंथ पग धरै ॥ पूजा करै जिनालय जाय । पूजै सदा सो कुरुके पाय ॥ सामायिक साधै अघनास । करै परब प्रोषधउपवास ॥ चारप्रकार दान नित देय । औगुण

त्यागै गुण गह लेय ॥ सप्तशील पालै बड़भाग । मनवचकाय धर्मसों राग ॥७०॥ सिंहासनपर बैठि नरेश । करै पुनीत धर्म उपदेश ॥ सुजन सभाजन किंकर लोग देय सुहितशिक्षा सब जोग ॥ दोहा—बीजराखि फल भोगवें, ज्यों किसान जग माहिं । त्यों चक्रीनृप सुख करै, धर्म बिसारै नाहिं ॥ ( नरेन्द्र--जोगीरासा ) इहि-विधि राज करै नरनायक, भोगै पुन्य विशालो । सुखसागरमें रमत निरन्तर, जात न जानै कालो ॥ एक दिना शुभकर्मसँजोगे, छेमंकर मुनि बंदे । देखे श्रीगुरुके पदपंकज, लोचन अलि आनंदे ॥ तीन प्रदछना दे सिर नायो, करि पूजा थुति कीनी । साधु समीप विनय कर बैठो, पायनमें दिठ दीनी ॥ गुरु उपदेश्यो धर्मशिरोमनि, सुनि राजा वैरागे ॥ राज रमा वनितादिक जो रस, ते रस बेरस लागे ॥ मुनिसूरजकथनी किरनावलि, लगत भरमबुध भागी । भवतन भोग स-रूप विचारैं, परम धरम अनुरागी ॥ इस संसार महावनभीतर, भ्रमतु ओर न आवे । जामनमरनजरादों दाभ्यो, जीव महादुख पावैं ॥ कबही जाय नरकथिति भुंजै, छेदन भेदन भारी । कबहुं पशु परजाय धरै तहँ, वध बंधन भयकारी ॥ सुरगतिमें परसंपति देखे, रागउदय दुख होई । मानुष जौनि अनेक विपतिमय सर्वसुखी नहिं कोई ॥ ८० ॥ कोई इष्टवियोगी विलखै, कोई अशुभसँयोगी । कोई दीन दारिद्र विगूचे, कोई तनके रोगी ॥ किसही घर कलिहारी नारी, कै बैरी सम भाई । किसहीकै दुख बाहर दीखै, किसही उर दुचिताई ॥ कोई पुत्र विना नित झूरै, होय मरै तब रोवै । खोटी संततिसों दुख उपजै । क्यों प्रानी सुख सोवै ॥ पुन्यउदय जिनके तिनको भी, नाहिं सदा सुख साता । यों जगवास जथारथ देखत । सब दीखै दुखदाता ॥ जो संसारविषै सुख होतो, तीर्थंकर क्यों त्यागैं । काहेको शिवसाधन करते, संजमसों अनुरागैं ॥ देह अपावन अथिर घिनावन । यामैं सार न कोई । सागरके जलसों शुचि कीजै, तौ भी शुचि नहिं होई ॥ सात कुधातमई मलमूरति, चाम लपेटी सोहै । अंतर देखत या सम जग में, और अपावन को है ॥ नवमलद्वार स्रवैं निशिवासर, नांव लिये घिन आवे । व्याधि उपाधि अनेक जहां तहां, कौन सुधी सुख पावै ॥ पोखत तौ दुख दोख करै सब, सोखत सुख उपजावै । दुर्जन देहस्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै ॥ राचनजोग स्वरूप न याको, विरचन जोग सही है । यह तन पाय महा तप कीजै

यामें सार यही है ॥ ९० ॥ भोग बुरे भवरोग बढ़ावैं, बैरी हैं जगजीके । बेरस होहिं विपाक समै अति, सेवत लागैं नीके ॥ वज्र अग्नि विषसों विषधरसों, ये अधिके दुखदाई । धर्मरतनके चोर चपल ये, दुर्गतिपंथ सहाई ॥ ज्यों ज्यों भोग सँजोग मनोहर, मनवांछित जन पावै । तृष्णा नागनि त्यों त्यों डंके, लहर जहर की आवै ॥ मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै । ज्यों कोई जन खाय धतूरो, सो सब कंचन मानै ॥ मैं चक्री पद पाय निरंतर, भोगे भोग घनेरे तौ भी तनक भये नहि पूरन, भोगमनोरथ मेरे ॥ राज समाज महा अघकारन वैर बढ़ावनहारा । वेश्यासम लछमी अति चंचल, याको कौन पत्यारा ॥ मोह महा रिपु बैर विचारा, जगजिय संकट डाले । घर कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवाले ॥ सम्यकदर्शन-ज्ञान-चरन-तप, ये जियके हितकारी । ये ही सार असार और सब, यह चक्री चितधारी ॥ छोड़े चौदह रतन नवों निधि, अरु छोड़े संग साथी । कोड़ि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी ॥ इत्यादिक सम्पति बहुतेरी, जीरण तृण ज्यों त्यागी । नीति विचार नियोगी सुतको, राज दियो बड़भागी ॥ १०० ॥ होय निशल्य अनेक नृपति सँग, भूषन वसन उतारे श्री गुरुचरन धरी जिन मुद्रा, पंच महाव्रत धारे ॥ धन यह समझ सुबुद्धि जगो नाम, धन यह धीरज भारी । ऐसी संपति छोरि बसे बन, तिन पद ढोक हमारी दोहा—परिग्रहपोट उतारि सब, लीनो चारित पंथ । निज सुभावमें थिर भये, वज्रनाभि निरग्रंथ ॥ चोपाई—बारहविधि दुद्धरतप करै । दशलाछनी धरम अनुसरै ॥ पढ़ै अंगपूरव श्रुतिसार । एकाकी विचरै अनगार ॥ ग्रीषमकाल बसैगिरिशीश । बर्षामें तरुतल मुनिईश । शीतमास तटनीतट रहैं । ध्यान अगिनिके कर्मनि दहैं ॥ एक दिना बनमें थिर काय । जोग दिये ठाड़े मुनिराय ॥ कमठजीव अजगरतन छारि । उपज्यो छठे नरक अतिघोर ॥ थिति सागर बाईस प्रमाण देखै दुख जानै भगवान ॥ पूरनआयु भोगकर मरयो । बनहि कुरंग भील अवतरयो ॥ कालसरूप वदन विकराल, वनचर जीवनको छयकाल ॥ धनुषवान लीये निजपान । भूमैं मांसलोभी बन थान ॥ सो पापी चल आयो तहां । जोगारूढ़ खड़े मुनि जहां ॥ शत्रुमित्रसों समकर भाव । लगे आपमें शुद्धसुभाव ॥ कुंकुम कादो महल मसान । कोमल सेज कठिन पाषान ॥ कंचन काच दुष्ट अरु

दास। जीवन मरन बराबर जास ॥ ११० ॥ निर्ममत्त तनकी सुधि नाहिं। सातों भय वरजित उरमाहिं ॥ देखि दिगंबर कोप्यो नीच। कंपित अधर दशनतल मींच ॥ तान कमान कान लों लई। तीखन शर मारयो निर्दई ॥ मुनिवर धर्मध्यान आराध। दुखमें धीरज तजो न साध ॥ दर्शनज्ञानचरन तप सार। चारों आराधन चितधार ॥ देहत्याग तब भये मुनिंद्र। मध्यम ग्रैवेयक अहमिंद्र ॥ तहँ उत्पादशिला मिकलंक। हंसतूलयुत रत्न पलंक ॥ उठो सेज तजि दीपत काय। अल्पकालमें जोबन पाय ॥ देखे दिशि अतिविस्मयरूप। महा मनोग विमान अनूप ॥ अतुल तेज अहमिंद्र निहार। अवधिज्ञान उपज्यो तिहिं बार ॥ जान्यो सब पूरन भवभेंव। चारित बृच्छ फल्यो सुखदेव ॥ अनुपम आठों दरब संजोय। रत्नबिंब पूजे थिर होय ॥ आयो सुर हर्षित निजथान। महारिद्ध महिमा असमान ॥ तीनभवनवरती जिनधाम। भावभक्ति नित करै प्रणाम ॥ तीर्थंकर केवल समुदाय। निजथानक थित पूजे पाय ॥ पंचकल्यानक काल विचारि। प्रणमैं हस्तकमल सिरधारि ॥

दोहा—अनाहूत अहमिंद्र गण, आवैं सहज सुभाव। धर्मकथा निजगुण कथन, करैं सनेह बढ़ाव ॥ कबहीं रत्न बिमानमें, कबहीं महल मझार। कबहीं बनक्रीड़ा करैं, मिलि अहमिंद्र कुमार ॥ १२० ॥ और बास निज बासतैं, उत्तम दीसै नाहिं। ताही तैं ते अमरगण, और कहीं नहिं जाहिं ॥ प्रीत भरे गुण आगरे, सुभग सोम श्रीवन्त। सात धात मलसों रहित, लेश्या शुकल धरन्त ॥ सब समान सम्पति धनी, सब मानैं हम इन्द्र। कला ज्ञान विज्ञान सम ऐसे सुर अहमिन्द्र ॥ शुकलवरन तनमन हरन, दोय हाथ परिमान। मानो प्रतिमा फटककी, महातेज दुतिवान ॥ कामदाह उरमें नहीं, नहिं वनिता को राग। कल्पलोकके सुर सुखी, असंख्यातवें भाग ॥ सत्ताईस हजार मित, वर्ष बीति जब जाहिं। मानसीक आहारको, रुचि उपजै मनमाहिं ॥ साढ़े तेरह पक्षपर, लेत सुगन्ध उसास। छठी अवनि लों जिन कही, अवधिविक्रिया जास ॥ सागर सत्ताईस मित, परम आयु तिहिं थान। सुभग सुभद्र विमान में, यों सुख करै महान ॥ चौपाई—अब सो भील महादुख दाय। रुद्रध्यान सों छोड़ी काय ॥ मुनिहत्या पातकतैं मखो। चरम शुभ्र सागरमें पखो ॥ दोहा—

कथा तहांके कष्टकी,को कर सकै बखान। भुगतै सो जानै सही, कै जानै भगवान॥ जन्मथान सब नरकमें, अंध अधोमुख जौन। घंटाकार घिनावनी, दुसह बास दुखभौन॥ तिनमें उपजौं नारकी, तलसिर ऊपर पाय। विषम वज्र कंटकमई, परैं भूमिपर आय॥ जो विषैल बीछू सहस, लगे देह दुख होय। नरक धराके परसतैं, सरस वेदना सोय॥ तहां परत परवान अति, हा हा करते एम। ऊंचे उछलैं नारकी, तपे तवा तिल जेम॥ सोरठा—नरक सातवेंमाहिं, उछलन जोजन पांचसौ। और जिनागममाहिं, जथा जोग सब जानियो॥ दोहा—फेर आन भूपर परै, और कहां उड़िजाहि। छिन्नभिन्न तन अति दुखित, लोट लोट बिललाहि॥ सब दिश देखि अपूर्व थल, चकित चित्त भयवान। मन सोचै मैं कौन हूं, पर्यो कहां मैं आन॥ कौन भयानक भूमि यह, सब दुख थानक निन्द। रुद्ररूप ये कौन हैं, निठुर नारकीवृन्द॥ काले बरन कराल मुख, गुंजा लोचन धार। हुँडक डील डरावने, करैं मार ही मार॥ सुजन न कोई दिठ परै, शरन न सेवक कोय। ह्यां सो कछु सूझे नहीं, जासों छिन सुख होय॥ १४०॥ होत विभंगा अवधि तब, निजपरको दुखकार। नरक कूपमें आप को, पर्यो जान निरधार॥ पूरवपापकलाप सब, आप जाय कर लेय। तब विलापकी ताप तप, पश्चाताप करेय॥ मैं मानुष परजाय धरि, धन जोबन मदलीन। अधम काज ऐसे किये, नरकवास जिन दीन॥ सरसोंसम सुखहेत तब भयो लम्पटी जान। ताहीको अब फल लग्यो, यह दुख मेरु समान॥ कंद मूल मद मांस मधु, और अभच्छ अनेक। अच्छन वश भच्छन किये, अटक न मानी ऐक॥ जल थल नभचारी विविध, विलबासी बहु जीव। मैं पापी अपराध बिन, मारे दीन अतीव॥ नगर दाह कीनो निठुर, गाम जलाये जान। अटवीमें दीनी अगिन, हिंसा कर सुखमान॥ अपने इन्द्रीलोभको, बोल्यो मृषा मलीन। कलपित ग्रंथ बनायकै, बहकाये बहुदीन॥ दावघातपरपंचसों, परलछमी हरलीय। छलबल हठबल दरघबल; परवनिता वशकीय॥ बढ़ो परिग्रहपोट सिर घटी न घटकी चाह। ज्यों ईंधनके जोग सों; अगिन करै अतिदाह॥ १५०॥ बिन छान्यो पानी पियो, निश भुंज्यौ अविचार। देवदरब खायो सही; रुद्रध्यान उर धार॥ कीनी सेव कुदेवकी, कुगुरुनको गुरु मानि। तिनहींके उप-

देशसों, पशु होमे हित जानि ॥ दियो न उत्तमदान मैं, लियो न संजमभार। पियो मूढ़ मिथ्यातमद, कियो न तप जगसार ॥ जो धर्मीजन दयाकरि, दीनी शीख निहोर। मैं तिनसों रिस करि अधम, भाषे बचन कठोर ॥ करी कमाई पर जनम, सो आई मुझ तीर। हा हा अब कैसे धरूं, नरक धरामें धीर ॥ दुर्लभ नरभव पायकैं, केई पुरुष प्रधान। तपकरि साधैं स्वर्ग शिव, मैं अभागि यह थान ॥ पूरब संतन यों कही, करनी चालै लार। सो अब आंखन देखिये, तब न करी निरधार ॥ जिस कुटुम्बके हेत मैं, कीने बहुविधि पाप। ते सब साथी बीछड़े, रह्यो नरकमें आप ॥ मेरी लछमी खानकों, सीरी हुए अनेक ॥ अब इस विपत विलापमें, कोइ न दीखै एक ॥ सारस सरवत तजि गये, सूखो नीर निराट। फलविन विरख विलोकिकैं, पंछी लागे बाट ॥ १६० ॥ पंचकरण पोषण अरध, अनरथ किये अपार। ते रिपु ज्यों न्यारे भये, मोहि नरकमें डार ॥ तब तिलभर दुख सहनको, हुतो अधीरज भाव। अब ये कैसे दुसह दुख, भरिहो दीरघ आव ॥ अघ वैरीके वश पखो। कहा करूं कित जाउं। सुनै कौन पूछूं किसे, शरन कौन इस ठाउं ॥ यहां कछू दुख हतनको, उक्त उपाव न मूर। थिति विन बिपत समुद्र यह, कब तिरहों तट दूर॥ ऐसी चिन्ता करत हूं, बढ़ै बेदना एम। घीव तेलके जोग तैं, पावक प्रजवलै जेम ॥ सोरठा—इहिविधि पूरव पाप, प्रथम नारकी शुधि करैं। दुख उपजावन जाप, होय विभंगा अवधितैं ॥ दोहा—तब ही नारकि निर्दई, नयो नारकी देख। धाय धाय मारन उठैं, महादुष्ट दुरभेख ॥ सब क्रोधी कलही सकल, सबके नेत्र फुलिंग। दुःख देनको अति निपुन, निठुर नपुंसकलिंग ॥ कुंत कृपान कमान शर, शकती मुगदर दण्ड। इत्यादिक आयुध विविध लिये हाथ परचंड ॥ कह कठोर दुर्वचन बहु, तिल तिल खंडैं काय। सो तबही ततकाल तन, पारे वत मिल जाय ॥ १७० ॥ कांटेकर छेदैं चरन, भेदैं मरम विचारि। अस्थिजाल चूरन करैं, कुचलैं खाल उपारि ॥ चीरैं करवत काठ ज्यों, फारैं पकरि कुठार। तोड़ैं अन्तर मालिका, अन्तर उदर विदार ॥ पेलैं कोल्हू मेलके, पीसैं घरटी घाल। तावैं ताते तेलमें, दहैं दहन परजाल ॥ पकरि पांय पटकैं पुहुमि, झटकि परसपर लेहिं। कंटक सेज सुवावहीं, शूलीपर धरि देहिं ॥ घसैं सकंटक रूखसों,

बैतरनी ले जाहिं। घायल घेरि घसीटियैं, किंचित करुणा नाहिं॥ कई रक्त चुवाव तन, विहबल भाजैं ताम। पर्वत अन्तर जायके, करैं बैठि विश्राम॥ तहां भयानक नारकी, धारि विक्रिया भेष। बाघ सिंह अहि रूपसों, दारैं देह विशेष॥ केई करसों पांय गहि, गिरसों देहिं गिराय। परैं आन दुर्भूमि पर, खंड खंड हो जाय॥ दुखसों कायर चित्तकरि, ढूंढ़ैं शरन सहाय। वे अति निर्दय घातकी, यह अति दीन घिघाय॥ व्रण वेदन नीकी करैं, ऐसे करि विश्वास। सींचैं खारे नीर सों, जो अति उपजै त्रास॥ १८०॥ केई जकरि जंजीर सों, खैंचि थम्भ अति बांधि। शुध कराय अब मारिये, नाना आयुध साधि॥ जिन उद्धत अभिमानसों, कीने परभव पाप। तपत लोह आसन विषै, त्रास दिखावैं थाप॥ तातो पुतली लोहकी, लाय लगावैं अंग। प्रीतकरी जिन पूर्वभव, पर कामिनिके संग॥ लोचन दोषी जानिकै, लोचन लेहिं निकाल। मदिरा पानी पुरुषको। प्यावैं तांबों गाल॥ जिन अंगन सों अघ किये, तेई छेदे जाहिं। पल भच्छनके पापतैं, तोड़ि तोड़ि तन खाहिं॥ केई पूरव बैरके, याददिबावैं नाम॥ कह दुर्वचन अनेक विधि। करैं कोप संग्राम॥ भये विक्रिया देहसों, बहुविधि आयुध जात। तिनहीसों अति रिस भरे, करैं परस्पर घात॥ शिथिल होय चिर युद्ध तैं, दीन नारकी जाम। हिंसा नन्दी असुर दुठ, आन भिरावैं ताम॥ सोरठा—तृतिय नरक परयंत। असुरादिक दुख देत हैं॥ भाख्यो जैन सिधंत। असुरगमन आगे नहीं॥ दोहा—इहिविधि नरक निवासमें, चैन एकपल नाहिं। तपैं निरन्तर नारकी, दुखदावानलमाहिं॥ १९०॥ मार मार सुनिये सदा, छेत्र महा दुरगंध। बहै बात असुहावनी, असुध क्षेत्र सम्बन्ध॥ तीन लोकको नाज सब, जो भच्छन कर लेय। तौ भी भूख न उपसमै, कौन एक कन देय॥ सागरके जलसों जहाँ, पीवत प्यास न जाय। लहै न पानी बूंदभर; दहै निरन्तर काय॥ वायपित्त कफ जनित जे, रोग जात जावंत। तिन सबहीको नरकमें, उदय कह्यो भगवंत॥ कटुतुंबीसो कटुक रस, करवत कीसी फांस। जिनकी मृतक मंझार सों, अधिक देह दुरवास॥ योजन लाख प्रमाण जहं, लोहपिण्ड गल जाय। ऐसीही अति उष्णता, ऐसी शीत सुभाय॥ छन्द—अड़िल्ल-पंकप्रभा परजंत

उशनता अति कही, धूमप्रभामें शीतउष्ण दोनों सही। छटी सातमी भूमि न केवल शीत है, ताकी उपमा नाहिं महा विपरीत है॥ दोहा—श्वान श्याल मंजारकी, पड़ी कलेवर रास। मास वसा अरु रुधिरको, कादो जहां कुबास॥ ठाम ठाम असुहावने, सेंभल तरुवर भूर। पैने दुखदैने विकट, कंटक कलित करूर॥ और जहां असिपत्र वन, भीम तरोवर खेत। जिनके दल तरवारसे, लगत घाव कर देत॥ २००॥ वैतरनी सरिता समल, लोहित लहर भयान। वहै खार शोणित भरी, मासकीच घिन घान॥ पक्षी वायस गीधगण, लोह-तुंडसों जेह। मरम विदारैं दुख करैं, चूँटै चहुंदिश देह॥ पंचेन्द्री मनको महा, जे दुखदायक जोग। ते सब नरक निकेतमें, एकपिण्ड अमनोग॥ कथा अपार कलेशकी, कहै कहां लों कोय। कोड़ जीभ सों बरनिये, तऊ न पूरी होय॥ सागरबंध प्रमाणथिति, छिन छिन तीखन त्रास। ये दुख देखैं नारकी परवश परे निरास॥ जैसी परवश बेदना, सहै जोव बहु भाय। स्ववश सहै जो अंश भी, तौ भवजल तिरजाय॥ ऐसे नरकहि नारकी, भयो भील दुठ भाव। सागर सत्ताईश की, धारी मध्यम आव॥ सागर काल प्रमाण अब, वरनों औसरपाय। जिनसों नरक निवासको, थिति सब जानी जाय॥ चौपाई-पहले तीन पल्यके भेव। एक चित्तकरि सो सुन लेव॥ जिनसों सागर उपजै सही। यथारीत जिनशासन कही॥ सोरठा—प्रथम पल्य व्योहार, दुतिय नाम उद्धार भण। अर्धा त्रितिय विचार, अब इनको विस्तार सुन॥ २१०॥ चौपाई—पहले गोल कूप कल्पिये। जोजन बड़े मान थरपिये॥ इतनो ही करिये गम्भीर। बुधिबल ताहि भरो न धीर॥ सात दिवसके भीतर जेह। जने भेड़के बालक लेह॥ उत्तम भोगभूमिके जान। तिनके रोम अग्र मनआन॥ ऐसे सूच्छम करिये सोय, फेर खंड जिनको नहिं होय। तिनसों महाकूप वह भरो, बारम्बार कूट दिढ़ करो॥ तिन रोमनकी संख्या जान। पैंतालीस अङ्क परवान॥ ते श्रीजिनशासनमें कहे। कर प्रतीत जैनी सरदहे॥ चामर—चार एक तीन चार पांच दो छ तीन ले। सुन्न तीन सुन्न आठ दोय अङ्क सुन्न दे॥ तीन एक सात सात सात चार नौ करो। पांच एक दोय एक नौ समार दो धरो॥ दोहा—सात बीस ये अङ्क लिखि, और अठारह सुन्न। प्रथम पल्यके

रोमकी, यह संख्या परिपुन्न ॥ चौपाई—सौ सौ बरस बीत जब जाहिं। एक एक काढ़ो यामाहिं ॥ ऐसी विधि सब करते सोय। कूप उदर जब खाली होय ॥ जो कछु लगै काल परवान। सो व्योहार पल्य उरआन ॥ प्रथम पल्य सबतैं लघुरूप। बीजभूत भाख्यो जिनभूप ॥ दोहा—संख्या कारण जिन कह्यो, और न यासों काज। दुतिय पल्य विवरण सुनो, जो भाख्यो जिनराज ॥ चौपाई—पूरव कथित रोम सब धरो। तिनके अन्श कल्पना करो ॥ बरस असंख कोटिके जिते। समय होहिं आतम परिमिते। २२०। एक एकके तावत मान। करो भाग विकलप मन आन ॥ याविधि ठान रोमकी रास। समय-समय प्रति एक निकास ॥ जितनो काल होय सब येह। सो उद्धार पल्य सुन लेह ॥ याके रोमन सों परवान। दीपोदधिकी संख्या जान ॥ दोहा—कोड़ा-कोड़ि पचीसके, पल्य रोम जावन्त। तितने दीप समुद्र सब, बरने जैनसिधन्त ॥ चौपाई—अब सुन त्रितिय पल्यकी कथा। श्रीजिनशासन बरनी जथा ॥ दुतिय पल्यके अमित अपार। रोम अंश लीजे निर्धार ॥ एक एकसे भाग प्रमान। करि सौ वर्ष समय परवान ॥ इहिविधि राशि होय फिर एह। समय समय प्रति लीजै तेह ॥ ऐसे करत लगै जो काल। सोई अर्धापल्य विशाल ॥ करमनकी थिति यासों जान। यह उत्कृष्ट कही भगवान ॥ दोहा—प्रथम पल्य संख्या तमित, दुतिय असंख्यप्रमान। असंख्यातगुण तीसरी. लिख्यो जिनागम जान ॥ इन सब तीनों पल्यमें, अद्धापल्य महान। दश कोड़ा कोड़ी गये, अद्धा-सागर ठान ॥ इस ही अद्धसिन्धुसों, पुन्य पाप परिभाव। संसारी जन भोगवैं स्वर्ग नरककी आव ॥ ऐसे दीरघ काललों, नरक सातवें थान। कमठ जीव दुख भोगवै, पख्यो कर्मवश आन ॥ धिक धिक विषयकषायमल, ये वैरी जग माहिं। ये ही मोहित जीवको, अवशि नरक ले जाहिं ॥ धर्म पदारथ धन्य जग, जा पटतर कछु नाहिं। दुर्गतिवास बचायकै, धरै स्वर्ग शिवमाहिं ॥ यही जान जिनधर्मको सेवो बुद्धि विशाल। मन तन वचन लगायकैं तिहुंपन तीनो काल।

इति श्रीमत्पार्श्वनाथपुराणभाषायां वज्रनाभअहमिन्द्रसुखाभिहुनारकदुःखवर्णनं नाम तृतीयोऽधिकारः

---

सरस्वती भवन

## अथ चतुर्थोऽधिकारः ।

सोरठा—मारूथल संसार, वामानंदन कल्पतरु । वांछितफलदातार, सुख-कामी सेवो सदा ॥ १ ॥ इसही जम्बूदीपमझार । भरतखंड दच्छिन दिश सार ॥ कौशलदेश वसै अभिराम । नगर अजोध्या उत्तमठाम ॥ आरजखंडमाहिं पर-धान । मध्यभाग राजै शुभथान ॥ गढ़ गोपुर खाइ गृहपांति । बनघनसों सोहैं बहुभांति ॥ ऊंचे जिनमंदिर मनहरैं । कंचन कलश धुजा फरहरैं ॥ वज्रबाहु भूपति तिहिं थान । वरइष्वाकुवंश-नभ-भान ॥ जैनधर्म पालै बड़भाग । निज पद कमलनि मधुप सराग ॥ प्रभाकरी तिय तासु सती । जीती जिन रंभा-रति-रती ॥ दोहा—यथाहंसके वंशको चाल न सिखवै कोय । त्यों कुलीन नर नारिके, सहज नमनगुण होय ॥ चोपाई—वह अहमिंद्र तहाँतैं चयो । तिनके सुदिन पुत्र सो भयो ॥ नांव धर्यो आनन्दकुमार । अतुल तेज सब लक्षण सार ॥ सुभग सोम श्रीवंत महान । बलवीरज धीरज गुणथान ॥ नरनारीमनमाणिकचोर । देखत नयन रहैं जा ओर ॥ जाके सुगुण शेष कह थकै । और कौन बरनन कर सकै ॥ जोबनवंत जनक तिस देख । व्याह महोत्सव कियो विशेख ॥ परनी राजसुता बहु भाय । जिनकी छबि बरनी नहिं जाय ॥ क्रमसों कुमर पितापद पाय । बलसे वश कीये बहराय ॥ १० ॥ दोहा—जोबन वय संपति बढ़ी, मिल्यो सकल सुख जोग । महामंडली पद लह्यो, पूरब पुन्य नियोग । चौपाई—अब सुन आठजातिके भूप । जिनको जिनमत कह्यो सरूप ॥ कोटि ग्रामको अधिपति होय राजा नाम कहावै सोय ॥ नवैं पांचसौ राजा जाहि । अधिराजा नृप कहिये ताहि ॥ सहस राय जिस मानै आन । महाराजराजा वह जान ॥ दोय सहस नृप नवैं अशेश । मंडलीक वह अर्ध नरेश ॥ चार सहस जिस पूजैं पाय । सोई मंडलीक नरनाय ॥ आठ सहस भूपतिको ईश । मंडलीक सो महा महीश ॥ सोलह सहस नवैं भूपाल । सो अधचक्री पुन्यविशाल ॥ सहस बतीस आन जिस बहैं । ताहि सकलचक्री बुध कहैं । इनमें श्रीआनंदनरेश । महामंडली पद परमेश ॥ सोरठा—आठ सहस सुख हेत, नृप नछत्र सेवैं सदा । कीरति किरण समेत, सोहै नरपति चंद्रमा ॥ चौपाई—एक दिना आनन्द महीश । बैठ्यो सभा सिंहासन शीश ॥ मंत्री तहां स्वामिहित नाम । कहै विवेकी सुवचन ताम ॥ स्वामी

यह वसंत ऋतुराज । सब जन करैं महोच्छवकाज ॥ नंदीश्वर व्रत औसर येह। करिये प्रभु पूजा निजगेह ॥ पूजा सदा पाप निरदलै । पर्वसंजोग महाफल फलै। ॥ परम पुन्यको कारन आन । नहीं जगतमें जज्ञ समान ॥ २० ॥ दोहा—जिन-पूजाकी भावना, सब दुखहरन उपाय । करते जो फल संवजै, सो परन्यो किमि जाय ॥ चौपाई—सुनि राजा मंत्री उपदेश । नगर महोच्छव कियो विशेष ॥ करि स्नान जिनमंदिर जाय । जैनबिंब पूजे बिहसाय ॥ बहुविधि पूजा दरब मनोग । धरे आन जिनपूजनजोग ॥ भावभक्तिसों मंगल ठयो । राजाके मन संशय भयो ॥ विपुलमती मुनिवर तिहि थान । दरशन कारन आये जान । तिनै पूजि नृप पूछै येह । भो मुनींद्र मुझ मन संदेह ॥ दोहा—प्रतिमा धात पषानकी, प्रगट अचेतन अंग। पूजक जनको पुन्यफल, क्यों कर देय अभंग ॥ तुम जगमें संशय तिमिर, दूरकरन रविरूप । यह मुझ भरम मिटाइये, करै वीनती भूप ॥ तब ज्ञानी गणधर कहैं, समाधान सुन राय । भवि जनको प्रतिमाभगति, महापुन्य फलदाय ॥ भाव शुभाशुभ जीवके, उपजैं कारण पाय। पुन्य पाप तिनसों बंधै, यों भाषो जिनराय ॥ कुसुम वरनको जोग लहि, जैसे फटक पषान अरुन श्याम दुतिकों धरै, यही जीवकी बान ॥ सो कारन है दोय विधि, अंतरंग बहिरंग ॥ तिनके ही उर आय है, जे समझैं सरवंग ॥ ३० ॥ बाहिज कारण जानियो, अंतरंगको हेत । सोई अंतरभाव नित, कर्मबंधको देत ॥ जिन परिणामन पुन्य बहु, बंधैं अन्यथा नाहिं ॥ तिन भावनको निमित है, जिनप्रतिमा जगमाहिं ॥ वीतरागमुद्रा निरखि, सुधि आवै भगवान । वही भावकारण महा, पुन्यबंधको जान ॥ रागद्वेषवर्जित अमल, सुखदुखदाता नाहिं । दर्पनवत भगवान हैं, यह आनो उरमाहिं ॥ तिनको चिंतन ध्यान जप, थुति पूजादिविधान ॥ सुफल फले निज भावसों, है मुक्ती सुखदान ॥ जैसे गुण प्रभुके कहे, ते जिन मुद्रामाहिं । थिरसरूप रागादिविन, भूषन आयुध नाहिं ॥ यद्यपि शिल्पीकृत कृतम, जिनवरविम्ब अचेत । तदपि सही अंतरबिषै, शुभभावनको हेत ॥ और एक दिष्टांत अब, सुन अवनीपति सोय । जियके उर दृष्टांतसों, संशय रहै न कोय ॥ चौपाई—गणिका धरी चितामें जाय । बिसनी पुरुष देखि पछताय ॥ जो जीवत मुझ मिलतो जोग । तो मैं करती बांछित भोग ॥ श्वान कहै उर क्यों

यह दही। मैं निजभक्षण करतो सही ॥ पुनि तिहि देख कहै मुनिराय। क्यों न कियो तप यह तनपाय ॥ ४० ॥ इहि विधि देखि अचेतन अंग। उपजैं भाव पाय परसंग ॥ तिन ही भावनके अनुसार। लाग्यो फल तिनको तिहिं बार ॥ दोहा—व्यसनी नर नरकहिं गयो, लह्यो भूखदुख श्वान ॥ साधु सुरग पहुंचे सही, भावनको फल जान ॥ चौपाई—यों जिनबिंब अचेतनरूप। सुखदायक तुम जानो भूप ॥ कारनसम कारज संपजै। यामैं बुध संशय नहिं भजै ॥ दोहा—जैसे चिंतामणि रतन, मनवांछित दातार। तथा अचेतन बिंब यह, वांछापूरनहार ॥ ज्यों याचत सुख कल्पतरु. दानी जनको देय ॥ त्यों अचेत यह देत है, पूजकको सुख श्रेय ॥ मणि मंत्रादिक औषधी, हैं प्रतच्छ जड़रूप। विष रोगादिकको हरैं त्यों यह अघहर भूप ॥ जड़ सरूपको पूज पद, प्रगट देखिये लोय। राजपत्र सिर धारिये, मुद्राअंकित होय ॥ राजपत्र सिर धारिये. राजाको भय मानि। जिनवर मुद्रा पूजिये, पातकको डर जानि ॥ प्रतिमापूजन चिंतवन, दरशनआदि विधान। हैं प्रमान तिहुं कालमें, तीन लोकमें जान ॥ जे प्रतिमा पूजैं नहीं, निंदा करैं अजान। तीनलोक तिहुं कालमें, तिनसम अधम न आन ॥ ५० ॥ जे प्रतिमा पूजैं सदा, भावभक्ति विधि शुद्धि। तिनको जन्म सराहिये, धन तिनकी सद्बुद्धि ॥ इत्यादिक उपदेश सुनि,आई उर परतीत। जिनप्रतिमापूजनविषैं. धरी राय दिढ प्रीत ॥ चौपाई—तिस ओसर मुनि वरनै ताम। तीनभवनवरती जिनधाम ॥ भानविमानविषै जिनगेह। सो पहले वरनै धरि नेह ॥ रतनमई प्रतिमा जगमगै कोटभानुछबि छीनी लगै ॥ निरुपम रचना विविध विशाल। सूरजदेव नमैं तिहुंकाल ॥ सुन आनंदो आनंदराय। विकसत आन अंगद ना माय ॥ जब संदेहशल्य निर्बरै। तब अवश्य उर सुख विस्तरै ॥ प्रात सांझ मंदिर चढ़ि सोय। अर्घ देय रविसनमुख होय ॥ करि जिनबिंबको मन ध्यान। अस्तुति करै राग मन आन ॥ रविविमान मनिकंचनमई। निरमापो अद्भुत छबि छई ॥ जैनभवनकरि मंडित सोय। देखत जनमन अचरज होय ॥ पूजा तहां करै नित राय। महा महोच्छव हर्ष बढ़ाय ॥ प्रतिदिन देय दया उर आन। दीन दुखितजनको बहुदान ॥ यह नित नेम करै भूपाल। चली नगरमें सोई चाल ॥ सब सूरजको करैं प्रनाम। देखादेखि चलो मत ताम ॥ समझे नहीं मूढ़ परनये। भानुउपासक

तबसों भये ॥ जो महंत नर कारज करै । ताकी रीत जगत आचरै ॥ ६० ॥ यों बहु पुन्य करै भूपाल । सुखमें जात न जानो काल ॥ एक दिना निजसभा नरेश निवसै मानो स्वर्गसुरेश ॥ धवल केश देख्यो निज शीश । मन कंप्यो सोचै नरईश ॥ जाहि देखि मनउत्सव घटै । कामी जीवनको उर फटै ॥ सो लखि सेत बाल भूपाल । भोगउदास भये ततकाल ॥ जगतरीति सब अथिर असार । चिंतै चितमें मोह निवार ॥ बाल अवस्था भई वितीत । तरुनाई आई निज रीत सो अब बीती जरा पसाय । मरन दिवस यों पहुंचै आय ॥ बालक काया कूंपल सोय । पत्ररूप जोबनमें होय ॥ पाको पात जरा तन करै । काल बयारि चलत भर परै ॥ कोई गर्भमाहिं खिर जाय । कोई जन्मत छोड़ै काय ॥ कोइ बालदशा धरि मरै । तरुन अवस्था तन परिहरै ॥ मरन दिवसको नेम न कोय । यातैं कछु सुधि परै न लोय । एक नेम यह तो परिवान । जन्म धरै सो मरे निदान ॥ महापुरुष उपजे बड़भागि सब परलोक गये तन त्यागि ॥ संसारी जन अपनी बार । पूरब उदै करै अनुसार ॥ परवतपतित नदीके न्याय । छिनही छिन थिति बीती जाय ॥ रागअंधप्रानी जगमाहिं । भोगमगन कछु सोचै नाहिं ॥ अंतकाल जब पहुंचै आय । कहा होय जो तब पछिताय ॥ पानी पहले बंधै जो पाल । वही काम आवै जलकाल ॥ ७० ॥ यही जान आतमहित हेत । करै विलंब न संत सुचेत ॥ आज काल जे करत रहाहिं । ते अजान पीछे पछताहिं ॥ रात दिवस घटमाल सुभाव । भरि भरि जलजीवनकी आव ॥ सूरज चांद बैल ये दोय । काल रँहट नित फेरैं सोय ॥

अथ बारह भावनाका स्वरूप ।

दोहा—राजा राना छत्रपति, हाथिनके असवार । मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार ॥ दलबल देवी देवता, मात पिता परिवार । मरती विरियाँ जीवको कोई न राखनहार ॥ दामविना निर्धन दुखी, तिस्नावश धनवान । कहीं न सुख सँसारमें, सब जग देख्यो छान ॥ आप अकेला अवतरै, आप अकेला होय । यों कबही इस जीवका, साथी सगा न कोय ॥ जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपनो कोय । परसम्पति पर प्रगट ये, पर हैं परियन लोय । दिपै चाम चादर मड़ी, हाड़ पींजरा देह । भीतर या सम जगतमें, और नहीं घिनगेह ।

सरस्वती भवन

सोरठा—मोहनींदके जोर, जगवासी घूमैं सदा। कर्मचोर चहुंओर, सरवस लूटैं सुधि नहीं ॥ सतगुरु देहिं जगाय, मोहनींद जब उपशमैं। तब कछु बनै उपाय, कर्मचोर आवत रुकै ॥ ८० ॥

दोहा—ज्ञान दीप तप तेल भरि, घर सोधै भ्रम छोर। या विधि विन निकसैं नहीं, पैठे पूरब चोर ॥ पंचमहाव्रत संचरन, समित पंच परकार। प्रबलपंच इन्द्रीविजय, धारनिर्जरा सार। चौदह राजु उतंग नभ, लोकपुरुष संठान। तामैं जीव अनादिसों, भरमत है विन ज्ञान ॥ जाचैं सुरतरु देहिं सुख चिंतत चिंतारैन। विन जाचैं विन चिंतवैं, धर्म सकल सुख दैन ॥ धनकन कंचन राजसुख, सबै सुलभ करि जान। दुर्लभ है संसारमें, एक जथारथ ज्ञान ॥ चौपाई—इहिविधि भूप भावना भाय, हितउद्यम चिंत्यो मन लाय। सबसों मोह ममत निरवारि, दयो धीर धीरज उरधारि ॥ जेठे सुतको दीनों राज, आप चले शिवसाधनकाज। सागरदत्त मुनीश्वरपास, संयम लियो तजी जग आस ॥ घनें भूप भूपतिके संग, धरे महाव्रत निर्भय अंग। अब आनन्द महामुनि धीर। वननिवास विचरै वरवीर ॥ दुद्धरतप बारह विधि करै, दुविधि संग ममता परिहरै। तिनके नाम कहूँ कछु धार, जिनशासन जिनको विस्तार ॥ प्रथम महातप अनशन नाम, दूजो ऊनोदर गुनधाम। तीजो है व्रतपरिसंख्यान, रसपरित्याग चतुर्थम मान ॥ ९० ॥ पंचम भिन शयनासन सार, कायकलेश छठो अविकार ॥ यह षटविधि बाहजतप जान, अब अन्तरतप सुनो सुजान ॥ पहले प्राछित विनय दुतीय, वैयाव्रत तीजो गनलीय। चौथो अन्तरंग सिज्झाय पंचम तप व्युत्सर्ग बताय ॥ षष्ठम ध्यान हरै सब खेद, ये अन्तरतपके सब भेद। अब इनको संक्षेप सरूप, सुनो संत तजि भावविरूप ॥ जिनके सुनत वँधै शुभध्यान, सेवत पद लहिये निरवान। तप विन तीनकाल तिहुंलोय, कर्मनाश कबहूँ नहिं होय ॥ दिनसो लेय वरष लगि करै, चार प्रकार असन परिहरै। रागरोग निर्दलन उपाय, सो अनशन भाष्यो जिनराय ॥ पौन अर्ध चौथाई टेक, एक ग्रास अथवा कन एक। ऐसी विधि जो भोजन लेत, ऊनोदर आलस हर लेत। जैसी प्रथम प्रतिज्ञा करै, ताही विधि भोजन आदरै। सो कहिये व्रतपरिसंख्यान, आशाव्याधि विनाशन जान ॥ लवनादिक रसछार उपाध। नीर-

सभोजन भुंजै साध । रसपरित्याग कहावै एम, इन्द्रियमदनाशन यह नेम ॥ शून्यगेह गिरि गुफा मसान, नारि-नपुंसक-वर्जित थान । बसै भिन्न शयनासन सोय, यासों सिद्धि ध्यानकी होय ॥ ग्रीषमकाल बसै गिरि सीस, पावसमें तरु-वरतल दीस । शीतसमय तटनीतट रहै, काय कलेश कहावै यहै ॥ १०० ॥ दोहा—यातपके आचरनसों, सहनशील मुनि होय, अब अन्तर तप भेद छह, कहूँ जिनागम जोय ॥ चौपाई—जो प्रमादवश लागै दोष, सोधे ताहि छोड़ि छउ रोष । आचारजवानी अनुसार, यही प्रथम वांछित तप सार ॥ जे गुण जेठे साधु महन्त , दरशन ज्ञानी चारितवंत । तिनकी विनय करै मन लाय, विनय नाम तप सो सुखदाय ॥ रोगादिक पीड़ित अविलोय, बाल विरध मुनि-वर जो होय । सेव करै निजसंयम राखि, सो वैयाव्रत आगमसाखि ॥ शक्ति समान सकल गुण ठाठ, करै साधु परमागमपाठ । परमोत्तम तप सो सिज्झाय जासों सब संशय मिट जाय ॥ निजशरीरममता परिहरै काउसग्गमुद्रा दिढ़ धरै । अन्तर बाहर परिग्रह छार, सोई तप व्युत्सर्ग उदार ॥ आरत रौद्र निवारै सोय, धर्म शुकुल ध्यावै थिर होय । जहां सकल चिन्ता मिट जाहिं, वही ध्यान तप जिनमतमाहिं ॥ दोहा—यह बारह विधि तप विषम, तपै महामुनि धीर । सहै परीषह बीसदो, ते अब बरनों बीर ॥

अथ बावीसपरीषह ।

छप्पय—छुधा तृषा हिम उष्ण; डंस मंसक दुखभारी । निरावरन तन अरति; खेद उपजावन हारी ॥ चरिया आसन शयन, दुष्ट वायक वध बंधन । याचै नहीं अलाभ रोग तिण फरस निबंधन ॥ मलजनित मान सनमान वश, प्रज्ञा और अज्ञानकर ॥ दरशन मलीन बाईस सब, साधुपरीषह जान नर ॥ दोहा—सूत्रपाठ अनुसार ये, कहे परीषह नाम ॥ इनके दुख जे मुनि सहै, तिनप्रति सदा प्रणाम ॥ ११० ॥ सोमावती—अनशन ऊनोदर तप पोषत; पाख मास दिन बीत गये हैं । जोग न बनै जोग भिक्षाविधि, सूख अंग सब शिथिल भये हैं ॥ तब बहु दुसह भूखकी वेदन, सहत साधु नहिं नेक नये हैं । तिनके चरन कमल प्रति दिन दिन, हाथ जोरि हम शीश नये हैं ॥ पराधीन मुनिवरकी भिच्छा, परघर लेहिं कहैं कछु नाहीं । प्रकृति विरोध पारना भुँजत,

बढ़त प्यासकी त्रास तहांही ॥ ग्रीषमकाल पित्त अति कोपै, लोचन दोय फिरे जब जाहीं। नीर न चहैं सहैं ऐसे मुनि, जयवंते वरतो जगमाहीं॥ शीतकाल सबही जन कांपैं, खड़े जहां बन विरछ डहे हैं। झंझा वायु बहै वरषाऋतु, वरसत बादल झूम रहे हैं ॥ तहां घोर तटनीतट चौबट, ताल पालपै कर्म दहे हैं ॥ सहैं संभाल शीतकी बाधा, ते मुनि तारन तरन कहे हैं॥ भूख प्यास पीड़ै उर अन्तर, प्रजलै आंत देह सब दागै। अग्निसरूप धूप ग्रीषमकी, तातो बाल झालसी लागै ॥ तपै पहार ताप तन उपजै, कोपै पित्त दाहज्वर जागै। इत्यादिक ग्रीषमकी बाधा, सहत साधु धोरज नहिं त्यागै ॥ डांस डंसे माखी तन काटैं, पीड़ैं वनपंछी बहुतेरे। डसैं व्याल विषयाले बीछू, लगैं खजूरे आन घनेरे ॥ सिंह स्याल सुँडाल सतावैं, रीछ रोझ दुख देहि बड़ेरे। ऐसे कष्ट सहैं समभावन, ते मुनिराज हरो अघ मेरे ॥ अन्तर विषय वासना बरतै, बाहर लोकलाज भय भारी। तातैं परम दिगम्बर मुद्रा, धरनहिं सकैं दीन संसारी ॥ ऐसी दुद्धर नगन परीषह, जीतैं साधु शीलव्रतधारी। निर्विकार बालकवत निर्भय, तिनके पायन ढोक हमारी ॥ देश कालको कारन लहिकै, होत अचैन अनेक प्रकारै। तब तहां खिन्न होहिं जगवासी, कलमलाय थिरता पद छारै ॥ ऐसी अरति परीषह उपजत, तहां धीर धीरज उर धारै। ऐसे साधन को उर अन्तर, बसो निरन्तर नाम हमारै ॥ जे प्रधान केहरिको पकरैं, पन्नग पकर पांवसों चंपत। जिनकी तनक देखि भौं बांकी, कोटक सूर दीनता जंपत ॥ ऐसे पुरुष पहाड़ उड़ावन, प्रलय पवन तिय वेद पर्यंपत। धन्य धन्य ते साधु साहसी, मनसुमेरु जिनको नहिं कंपत ॥ चार हाथ परवान निरखि पथ, चलत दिष्ट इत उत नहिं तानै। कोमल पांय कठिन धरतीपर, धरत धीर बाधा नहि मानै ॥ नाग तुरंग पालकी चढ़ते, ते सवाद उर यादि न आनैं। यों मुनिराज भरैं चर्यादुख, तब दिढ़कर्म कुलाचल भानैं ॥ गुफा मसान शैल तरु कोटर, निवसैं जहां शुद्धि भू हेरैं। परिमित काल रहैं निश्चल तन, बारबार आसन नहिं फेरैं ॥ मानुष देव अचेतन पशुकृत, बैठे विपत आन जब घेरै। ठौर न तजैं भजैं थिरता पद, ते गुरु सदा बसो उर मेरै ॥ १२० ॥ जे महान सोनेके महलन, सुन्दर सेज सोय सुख जोवैं। ते अब अचल अंग एकासन,

कोमल कठिन भूमिपर सोवैं ॥ पाहन खंड कठोर कांकरी, गड़त कोर कायर नहि होवैं। ऐसी शयन परीषह जीतत, ते मुनि कर्म कालिमा धोवैं ॥ जगत जीव यावंत चराचर, सबके हित सबके सुखदानी। तिनैं देख दुर्बचन कहैं दुठ, पाखंडी ठग यह अभिमानी ॥ मारो याहि पकरि पापीको, तपसी भेष चोर है छानी। ऐसे वचन बाणकी वर्षा, छिमाढाल ओढ़ैं मुनिज्ञानी ॥ निरपराध निर्बैर महामुनि, तिनको दुष्टलोग मिलि मारैं केई खैंच थंभ सों बांधत, केई पावकमें परजारैं ॥ तहां कोप नहिं करहिं कदाचित, पूरव कर्म विपाक विचारैं। समरथ होय सहैं बध बंधन, ते गुरु सदा सहाय हमारैं ॥ घोरवीर तप करत तपोधन, भयो क्षीन सूखी गलबाहीं। अस्थि चाम अवशेष रह्यो तन, नसा जाल झलको जिसमाहीं ॥ औषधि अशन पान इत्यादिक, प्रान जाय पर जांचत नाहीं। दुद्धर अजाचीक व्रत धारैं, करहिं न मलिन धरम पछताहीं ॥ एक वार भोजनको विरियां, मौन साधि बसतीमें आवैं ॥ जो नहिं बनै जोग भिच्छाविधि, तौ महँत मन खेद न लावैं ॥ ऐसे भ्रमत बहुत दिन बीते, तब तप विशद भावना भावैं। यों अलाभकी परम परीषह, सहैं साधु सोई शिव पावैं ॥ वात पित्त कफ शोणित चारों, ये जब घटैं बढ़ैं तनमाहैं। रोग संजोग सोग तन उपजत, जगत जीव कायर हो जाहैं ॥ ऐसी व्याधि वेदना दारुन, सहैं शूर उपचार न चाहैं ॥ आतम लीन देहसों विरकत, जैन जती जिन नेम निवाहैं ॥ सूखे तिन अरु तीक्षन कांटे, कठिन कांकरी पांय विदारैं। रज उड़ि आय परै लोचनमें, तीर फांस तन पीर विथारै ॥ तापर पर सहाय नहिं वांछत अपने करसों काढ न डारैं। यों तृण परस परीषह विजई। ते गुरु भव भव शरन हमारैं ॥ जाव जीव जलन्हौन तज्यो, जिन नगनरूप वनथान खरे हैं। चलैं पसेव धूपकी बिरियां। उड़त धूल सब अंग भरे हैं ॥ मलिन देहको देखि महामुनि। मलिन भाव उर नाहिं करे हैं ॥ यों मलजनित परीषह जीतें। तिनैं हाथ हम सीस धरे हैं ॥ जे महान विद्यानिधि विजई। चिर तपसी गुन अतुल भरे हैं ॥ तिनकी विनय वचनसों अथवा। उठि प्रनाम जन नाहिं करे हैं ॥ तौ मुनि तहां खेद नहिं मानैं। उर मलीनता भाव हरे हैं। ऐसे परम-साधुके अहनिशि। हाथ जोर हम पांय परे हैं ॥ तर्क छन्द व्याकरन कलानिधि

आगम अलङ्कार पढ़ जानैं ॥ जाकी सुमति देखि परवादी । बिलखे होहिं लाज उर आनै ॥ जैसे नाद सुनत केहरिको । वनगयन्द भागत भय मानैं । ऐसी महाबुद्धि के भाजन, पै मुनीश मद रञ्च न ठानैं । १३० । सावधान बरतैं निशि वासर, संयमशूर परमवैरागी । पालत गुपति गए दीरघ दिन, सकल संग ममता परित्यागी ॥ अवधिज्ञान अथवा मनपरजय, केवल किरन अजों नहिं जागी । यों विकलप नहिं करहिं तपोधन, सो अज्ञान विजई बड़भागी ॥ मैं चिर घोर-घोर तप कीनौं, अजौं रिद्धि अतिशय नहिं जागै । तपबल सिद्ध होंहिं सब सुनिये, सो कछु बात झूठसी लागै ॥ यों कदापि चितमें नहिं चिन्तत, समकित शुद्ध शांतरस पागै । सोई साधु अदर्शनविजई, ताके दर्शनसों अघ भागै ॥ कवित्त इकतीसा—ज्ञानवरणीसों दोय प्रज्ञा अज्ञान होय, एक महा मोहतैं अदर्शन बखानिये । अन्तराय कर्मसेती उपजै अलाभ दुख, सपत चारित्र मोहनीके बल जनिये ॥ नगन निषिद्या नारिमान सनमान गारि, जाचना अरति सब ग्यारै ठीक ठानिये । एकादश बाकी रही वेदनी उदोत कही, बाइस परीषा उदै, ऐसे उर आनिये ॥ अड़िल्ल-एक वार इनमाहिं, एक मुनिकै कही । सब उनीस उतकृष्ट, उदय आवैं सही । आसन शयन विहार, दोय इनमाहिंकी । शीत उष्णमें एक, तीन ये नाहिंकी ॥

अथ दशलक्षण धर्म ।

दोहा—अब दशलक्षण धर्मके, कहूँ मूल दश अंग । जे नित श्रीआनंदमुनि पालत हैं सरवंग ॥ चौपाई—विनादोष दुर्जन दुख देय, समरथ होय सकल सह लेय । क्रोध कषाय न उपजै जहां, उत्तम छिमा कहावै तहां ॥ आठ महामद पाय अनूप, निरभिमान बरतै मृदुरूप । मानकषाय जहां नहिं होय, मार्दव नाम धरम है सोय ॥ जो मनचिंतै सो मुख कहै, करै कायसो कारज बहै । मायाचार न उर पाइये, आर्जव धर्म यही गाइये ॥ बोलै वचन स्वपरहितकार, सत्यसुरूप सुधा उनहार । मिथ्यावचन कहै नहिं भूल, सोई सत्य धर्मतरुमूल ॥ पर कामिनि परदरबमँझार, जो विरक्त बरतै छल छार । अंतर शुद्ध होय सरवंग, सोई शौच धर्मको अंग ॥ १४० ॥ मन समेत ये इन्द्री पंच, इनको शिथिल करै नहिं रंच । त्रस थावरको रक्षा जोय, संजम धर्म बखान्यो सोय ॥ ख्याति

लाभ पूजा सब छंड पंचकरणको दीजौ दंड। सो तपधर्म कह्यो जगसार, अनशनादि बारहपरकार ॥ संजमधारी वृतिपरधान, दीजौ चउविधि उत्तम दान। तथा दुष्टविकलप परिहार, त्यागधर्म बहु सुखदातार ॥ बाहिज परिग्रहको परित्याग, अंतर ममता रहै न लाग। आकिंचन यह धर्म महान, शिवपददायक निहचै जान ॥ बड़ी नारि जननी सम जान, लघु पुत्री सम बहिन बखान। तजि विकार मन बरतै जेह, ब्रह्मचर्य परिपूरण एह ॥

अथ सोलह कारण भावना।

दोहा—सोलह कारण भावना, भावैं मुनि आनंद। तिनको नाम सरूप कछु, लिखौं सकल सुखकंद ॥ चौपाई—आठ दोष मद आठ मलीन, छै अनायतन शठता तीन। ये पचीस मल वरजित होय, दर्शनशुद्धि कहावै सोय ॥ रत्नत्रयधारी मुनिराय, दर्शनज्ञानचरितसमुदाय। इनकी विनयविषैं परवीन, दुतियभावना सो अमलीन ॥ शीलभार धारै सकचेत, सहस अठारह अंग समेत। अतीचार नहिं लागै जहां, तृतिय भावना कहिये तहां ॥ आगमकथित अर्थ अवधार, यथाशक्ति निजबुधि अनुसार। करैं निरंतर ज्ञान अभ्यास, तुरिय भावना कहिये तास ॥ १५० ॥ दोहा धर्म धर्मके फलबिषैं, बरतै प्रीति विशेख यही भावना पंचमी, लिखी जिनागम देख ॥ चौपाई—औषधि अभय ज्ञान आहार, महादान यह चार प्रकार। शक्तिसमान सदा निरवहै, छठीभावनाधारक वहै ॥ अनशन आदि मुक्तिदातार, उत्तमतप बारह परकार। बल अनुसार करै जो कोय, सो सातमी भावना होय, जतीवर्गको कारन पाय, विघन होत जो करै सहाय। साधुसमाधि कहावै सोय, यही भावना अष्टम होय ॥ दशविधि साधु जिनागम कहे, पथपीड़ित रोगादिक गहे। तिनकी जो सेवा सतकार, यही भावना नौमी सार ॥ परमपूज्य आतम अरहंत, अतुल अनंत चतुष्टयवन्त। तिनकी थुति नति पूजा भाव, दशमभावना भवजलनाव ॥ जिनवरकथित अर्थ अवधार, रचना करै अनेक प्रकार। आचारजकी भक्तिविधान, एकादशम भावना जान ॥ विद्यादायक विद्यालीन, गुणगरिष्ट पाठक परवीन। तिनके चरन सदा चित रहै, बहुश्रुतिभक्ति बारमी यहै ॥ भगवतभाषित अर्थ अनूप, गनधर ग्रंथित ग्रंथसरूप। तहां भक्ति वरतै अमलान, प्रवचनभक्ति तेरमी जान ॥ षट

आवश्यक क्रिया विधान, तिनकी कबही करै न हान। सावधान वरतै थिरचित सो चौदहमी परमपवित्त ॥ १६० ॥ करि जप तप पूजा व्रत भाव, प्रगट करे जिन धर्मप्रभाव। सोई मारग परभावना, यहै पंचदशमी भावना ॥ चार प्रकार संघ-सों प्रीति, राखै गायवच्छकी रीति। यही सोलमी सबसुखदाय, प्रवचनबात्सल्य अभिधाय ॥ दोहा—सोलहकारन भावना, परमपुन्यको खेत। भिन्न भिन्न अरु सोलहों, तीर्थंकरपद हेत ॥ बंधप्रकृति जिनमतविषैं, कहीं एकसौ बीस, सो सत्रह मिथ्यातमें, बांधत है निशिदीस ॥ तीर्थंकर आहार दुक, तीन प्रकृति ये जान, इनको बंध मिथ्यातमें, कह्यो नहीं भगवान ॥ तातैं तीर्थंकर प्रकृति, तोनों समकितमाहिं। सोलह कारनसों बँधै, सबको निहचै नाहिं ॥ सोरठा—पूज्यपाद मुनिराय, श्रीसरवारथसिद्धिमें। कह्यो कथन इहि भाय, देखि लीजियो सुबुधि-जन ॥ कुसुमलता—सोलह कारन ये भवतार, सुमरत पावन होय हियो। भावैं श्रीआनदमहामुनि, तीर्थंकरपद बंध कियो। काय कषाय करी कृश अति ही सत संयम गुण पोढ़ कियो। तवबल नाना रिद्धि उपन्नो, राग विरोध निवार दियो। जिस वन जोग धरैं जोगेश्वर, तिस वनकी सब विपत टलैं। पानी भरहिं सरो-वर सूखे, सब रितुके फलफूल फलैं ॥ १७० ॥ सिंहादिक जे जातविरोधी, ते सब बैरी बैर तजैं। हंस भुजंगम मोर मजारो, आपसमें मिलि प्रीति भजैं ॥ सोहैं साधु चढ़े समतारथ, परमारथपथ गमन करैं। शिवपुर पहुंचनकी उर वांछा, और न कछु चितचाह धरैं ॥ देहविरक्त ममत्तविना मुनि, सबसों मैत्री भाव वहैं। आतमलीन अदीन अनाकुल, गुन बरनत नहिं पार लहैं ॥ एक दिना ते छीर वनांतर ठाड़े मुनि वैराग भरे। पौनपरीषहसों नहिं कांपैं, मेरुशिखर ज्यों अचल खरे ॥ सो मर नरक कमठचर पापी, नानाभांति विपत्ति भरी। तिसही काननमें विकटानन, पंचाननकी देह धरी ॥ देखि दिगंबर केहरि कोप्यो। पूर्वभ-वांतर वैर दह्यो। धायो दुष्ट दहाड़ ततच्छन, आन अचानक कंठ गह्यो ॥ तीखे नखन विदारै काया, हाथ कठोरन खंड करै। बांकी दाढ़नसों तन भेद्यो, वदन भयानक ग्रास भरै ॥ यों पशुकृत परचंड परीषह, समभावनसों साधु सही। क्रोध विरोध हिये नहिं आन्यो, परमछिमा उरमांझ वही ॥ धनि धनि श्रीआनंदमुनी-श्वर, धनि यह धीरजभाव भजे। ऐसे घोर उपद्रवमें जिन, जोगजुगतसों प्रान

तजे ॥ अंतसमयपरजंत तपोधन, शुभभावनसों नाहिं चये । आनत नाम स्वर्गमें स्वामी, सुरगनपूजित इन्द्र भये ॥ १८० ॥ दोहा— स्वर्गलोक बरनन लिखों, जथा शक्तिसुखरीत । धर्म धर्मके फलविषैं, ज्यों मन उपजै प्रीत ॥

स्वर्गवर्णन ।

चौपाई—चंदकांतिमूंगामणिमई । नानावरन भूमि वरनाई ॥ रातदिवसको भेद न जहां । रत्नउद्योत निरंतर तहां ॥ मणि कंगुरे कंचन प्राकार । औंड़ी परिखा ऊंचे द्वार ॥ तोरन तुंग रतनग्रह बसैं । ऐसे स्वर्गलोकपुर बसैं ॥ चंपक पारिजात मंदार । फूलन फैल रही महकार ॥ चैत विरछतैं बढ़यो सुहाग । ऐसे स्वर्ग रवाने बाग ॥ विपुल वापिका राजैं खरी । निर्मल नीर सुधामय भरी ॥ कंचनकमल छई छबिवान । मानिकखंडखचित सोपान ॥ कामधेनु सोहैं सब गाय । कल्पवृक्ष सबही तरुराय ॥ रत्नजाति चिंतामनि सबे । उपमा कौन स्वर्गको फबै ॥ गान करैं कहिं सुर सुंदरीं । वन वीथिन बैठी रस भरीं ॥ कहीं देवगन वनिता संग । लीलावन विचरैं मनरंग ॥ मंद सुगंध बहै नित वाय । पहुपरैनुरंजिक सुखदाय ॥ आंधी मेह न कबहीं होय । ताप तुसार न व्यापै कोय ॥ रितुकी रीति फिरै नहिं कदा । सोमकाल सुखदायक सदा ॥ छत्रभंग चोरी उतपात सुपने नहीं उपद्रवजात ॥ ईति भीति भूचाल न होय । बैरी दुष्ट न दीसै कोय ॥ रोगी दोखी दुखिया दीन । विरधवैस गुणसंपतिहीन ॥ १९० ॥ बढ़ती अंगविकलता कहीं । ये सब स्वर्गलोकमें नहीं ॥ सहज सोम सुदरसरवंग । सब आभरनअलंकृत अंग ॥ लच्छनलंछित सुरभि शरीर । रिद्धसिद्धमंदिर मनधीर ॥ कायसरूपी आनंदकंद । कामिनिनेत्रकमलनीचंद ॥ वदन प्रसन्न प्रीतरस भरे विनयबुद्धिविद्या आगरे ॥ यों बहु गुणमंडित स्वयमेव । ऐसे स्वर्गनिवासी देव ॥ दोहा—ललितवचन लीलावती, शुभलच्छन सुकुमाल । सहजसुगंध सुहावनी, जथा मालतीमाल ॥ शीलरूप लावण्यनिधि, हावभावरसलीन । सीमा सुभगसिंगारकी, सकलकलापरवीन ॥ निरत गीत संगीत सुर, सब रसरीतमंझार ॥ कोविद होंहि सुभावतैं, सुरगलोककी नार । पंचइन्द्रिमनको महा, जे जगमें सुखहेत तिन सबहीको जानियो, सुरगलोकसंकेत ॥ चौपाई—इत्यादिक बहुसंपतिथान । देवलोकमहिमा असमान ॥ आनतवर विमान है जहां । धर्यो जन्म सुरपतिने

तहां ॥ दोहा—उपज्यौ संपुट गर्भतैं, तेज पुंज अति चंड। मानो जलधरपट-लतैं प्रगट्यो दामिनि दंड ॥ एक महूरतमें तहां, संपूरन तन धार। किधौं रतन की सेज तजि, सोवत उठ्यो कुमार ॥ २०० ॥ मनिकिरीट माथे दिपै, आनन अधिक सरूप। कानन कुंडल जगमगैं, पानन कटक अनूप ॥ भुजभूषणभूषित भुजा, हिये हार छबि देत। अंग अंग इत्यादि बहु, सब आभरनसमेत ॥ चौपाई—शनै शनै देखै दिश सही। लोचनकोर कानलगि रही ॥ विसमयवंत होय मन ताम। कहैं कौन आयो किस धाम ॥ अहो कौन यह उत्तम देश। सकलसंपदाथान विशेश ॥ कंचनके मन्दिर मनि जरे। दीसें दिव्य अपछरा भरे ॥ अति उतंग अति ही दुति धरै। मध्य सभा मंडप मनहरै ॥ सिंहासन अद्भुत इहि ठाम। मानो मेरुशिखर अभिराम ॥ अनुपम नाटक देखनजोग। श्रवण-सुखद ये गीत मनोग ॥ ये लावण्यवतीं वरनारि। रूपजलधिबेला उनहारि ॥ ये उतंग हाथी मदभरे। तेज तुरंगनके गन खरे ॥ कंचनरथ पायकदल जेह। मो प्रति सिर नावैं सब येह ॥ सब आनन्द भरे मुझ देख। सब विनीत सब सुन्द-र भेख ॥ जयजयकार करैं विहसाय। कारन कछु जान्यो नहिं जाय ॥ दोहा—इन्द्रजाल अथवा सुपन, कै माया भ्रम कोय। यों सुरेश सोचै हिये, पै निरनय नहिं होय ॥ चौपाई—तब तिस थानक देव प्रधान। मनकी बात अवधिसों जान ॥ जोगवचन बोले सिरनाय। संशयहरन श्रवनसुखदाय ॥ २१० ॥ हम विनती सुनिये सुरराज। जीवन जनम सफल सब आज ॥ अब सनाथ स्वामी हम भये जन्मजोगतैं पावन थये। सूरज उदय कमलनी बाग। विकसै जथा जग्यो सिर भाग ॥ नन्द वर्ध हम देहिं अशीश। चिर यह राज करो सुरईश ॥ अहो नाथ यह उत्तम ठाम। स्वर्ग तेरमो आनत नाम ॥ जगतसार लछमीको येह। निरुपमभोग निरन्तर गेह ॥ तुम इहि थान इन्द्र अवतरे। पूर्व जन्म दुद्धर तप धरे ॥ ये सब सुर सेवक तुम तने। ये परिवार लोक हैं घने ॥ ये मनोग वनिता मण्डली। तुम आदेश चहै मनरली ॥ ये पटदेवी लावनखान। सब देवो इन मानें आन ॥ ये विमानपुर महल उतंग, चमर छत्र सेना सप्तांग। धुजा सिंहासन आदि मनोग। सकल सम्पदा यह तुम जोग ॥ ऐसे वचन अन-न्तर तबै। जान्यो इन्द्र अवधिबल सबै ॥ मैं पूरव कीनों तप घोर दंडे करम

धरम धन चोर ॥ जीव जातको निर्भयदान, दीनो आप बराबर जान। सब उपसर्ग सहै धरि धीर, जीत्यो महारागरिपु वीर ॥ काम विषम बैरी वश कियो, अरु कषाय वन कूँचा दियो। जिनवरआन अखंडित पोष, चारित चिर पाल्यो निरदोष ॥ इहि विधि सेयो धर्म महान, तिस प्रभाव दीखो यह थान। दुरगतिपात निवारन करो, तिन मुझ इन्द्रलोक ले धरो ॥ २२० ॥ सो अब सुलभ नहीं इस देह, भोग जोग है थानक येह ॥ राग आग दुखदायक सदा, चारितजल बिन बुझै न कदा ॥ सो कारन सुरगतिमें नाहिं, व्रतको उदय न या पदमाहिं। ह्यां सम्यक्दर्शन अधिकार, शंकादिक मलवरजित सार ॥ कै जिनवरकी भक्ति सहाय, और न दीखै धर्म उपाय। यह विचारि जिनपूजन हेत, उठ्यो इन्द्र परिवार समेत ॥ अमृत वापिकामें करिन्हौन। गयो जहां मणिमय जिनभौन। रतनविम्ब वन्दे विहसाय। भाव भगतसों सीस नवाय ॥ पूजा करी दरव धरि आठ, पुलकित अग पढ़यो थुतिपाठ। चैतवृक्ष जिन प्रतिमा जहां। महामहोच्छव कीनो तहां ॥ यों बहु पुन्य उपायौ सही। फेरि आय निज सम्पति गही ॥ दिव्यभोग भुंजे बड़भाग। लोकोत्तम जिस सहज सुहाग ॥ शोभनरूप प्रथम संठान. वसुवैक्रियक सुलच्छन वान ॥ कोमल सुरभिसचिक्कन देह, सात धात वरजित गुनगेह ॥ पलकपात लोचनमें नहीं, मलपसेव नख केश न कहीं। जरा कलेश न चिन्ता सोग। नाहीं अलप मृत्युभय रोग ॥ इत्यादिक दुखजोग अनेक. तिनमें नहीं अमरके एक। आठरिद्धि अणिमादि पसत्थ तिसबल सकलकाज समरत्थ ॥ सुरग लोकके सुखकी कथा। कहै कहां लों बुधबल जथा ॥ बैठि मनोगत विमल विमान। विचरै नभपथ वांछितथान ॥२३०॥ कबही मेरु जिनालय गमै। कबही आन कुलाचल रमै ॥ दीप समुद्र असंख अपार। करै सुरेन्द्र सुछन्द बिहार ॥ वर्ष वर्षमें हर्ष बढ़ाय। तीन बार नन्दी सुर जाय ॥ पंच कल्याणक समय सुजोग। करै तीर्थपदनमन नियोग ॥ और केवली प्रभुके पाय। दोय कल्यानक पूजै आय ॥ निज कोठे थिर होय सुज्ञान। करै दिव्यवाणी रसपान ॥ सभा सिंहासन बैठि सुरेश। देय सुरनप्रति हित उपदेश ॥ करै तत्ववर्णन विस्तार। अनेकांतवाणी अनुसार ॥ जे सुर सम्यक दर्शन हीन। तपबल देव भये सुखलीन ॥ तिनप्रति धर्मवचन

उच्चरै। दर्शनगुनकी प्रापति करै॥ इहिविधि विविध करै शुभकाज। महापुन्य संचै सुरराज॥ दर्शनज्ञान रतन भंडार। चारित गुणको नहिं अधिकार॥ धर्म वासना वासित जोग। करै पुनीत पुन्य फल भोग॥ कबहीं सुनै अपछरा गान। निरखय नाटक निरुपम थान॥ कबहीं शुभ सिंगाररस लीन। हाव भाव जोवै परवीन॥ कबहीं हास्यकथा विस्तरै। वनक्रीड़ा देविन संग करै॥ यों नानाविधि करत विलास। प्रतिदिन सुखसागरमें बास॥ साढ़े तीन हाथ परवान। दिव्य शरीर अतुल दुतिवान॥ सागर बीस परमथिति जास। बीस पच्छपर लेय उसास॥ बीस हजार वर्ष अवसान। मनसा भोजन करै महान॥ पंचम पिरथी लों जिस सही। अवधिशक्ति जिनशासन कही॥ तावत मान बिक्रियाखेत। सकलकाज साधन सुखहेत॥ असंख्यात सुर सेवन पाय। देवी नेत्र कमल दिनराय॥ यों पूरवकृत पुन्य संयोग। करैं इन्द्र इन्द्रासन भोग॥ दोहा—कहा इन्द्र अहमिन्द्र पद, जन्म धरै फिर आय॥ जैन धर्म नृपकी धुजा, लोक शिखर फहराय॥

इति श्री पार्श्वपुराण भाषायां आनन्दरायइन्द्रपदप्राप्तिवर्णनं नाम चतुर्थोऽधिकारः

## अथ पंचमोऽधिकारः

दोहा—वंदों पारस पद कमल, अमल बुद्धि दातार। अब वरनों जिनराज के, पंच कल्यानक सार॥ चौपाई—प्रथम अनन्त अलोकाकाश। दशौ दिशा मरजाद न जास॥ दूजो दरब जहां नहिं और। सुन्न सरूप गगन सब ठौर॥ तहां अनादि लोक थिति जान। छीदे पांय पुरुष संठान॥ कटिपै हाथ सदा थिर रहै। यह सरूप जिन शासन कहै॥ पौन पिण्ड बेढ़ो सरवंग। चौदह राजू गगन उतंग॥ घनाकार राजूगण ईश। कहे तीन सौ तैंतालीश॥ जीवादिक छह द्रव्य सदीव। तिनसों भर्यो जथा घट घीव॥ स्वयंसिद्ध रचना यह बनी। ना इस करता हरता धनी॥ दरव दृष्टिसों ध्रौव्य सरूप। परजयसों उतपत छयरूप॥ जैसे समुद्र सदा थिर लसै। लहर न्याय उपजै अरु नसै॥ लोक नाड़ि तिस मध्य महान। चौदह राजू व्योम उचान॥ राजूमित चौंड़ी चहुंपास। यह त्रसखेत जिनागम भास॥ याके बाहर जंगम जीव। समुदघात विन नाहिं सदीव। तामें तीनों लोक विशाल। ऊरध मध्य और पताल॥ सोलह स्वर्ग

पटल बावन्न । नव ग्रीवक नव जान रवन्न ॥ अनुदिश और अनुत्तर येह । एक एक ही पटल गिनेह ॥ ये सब त्रेसठ पटल वखान । सिद्ध खेत सोहैं सिर थान ॥ ऊरध लोक बसै इहि भाय । उत्तम सुरनायक सुखदाय ॥ अधोलोकमें बहुविधि भेय । सात नरक असुरादिक देव ॥ मध्यलोक पुनि तीजो तहां । असंख्यात दीपोदधि जहां ॥ तिनमें शोभावंत सुहात । जम्बूदीप जगत विख्यात ॥ लच्छ महा जोजन विस्तार । सूरज मंडलकी उनहार ॥ वज्रकोटि जिस ओट अभंग । परिमित जोजन आठ उतंग ॥ चारों दिश दरवाजे चार । तिनके नाम लिखों अवधार ॥ विजय नाम पूरवमें जान । वैजयंत दच्छिन दिश ठान ॥ पश्चिम भाग जयंत दुवार । उत्तरमें अपराजित सार ॥ लवन समुद्र खातिका रूप । चहुंदिश बेढ़यो सजल सरूप ॥ तहां सुदर्शन मेरु महान । मध्यभाग शोभा असमान । अति उतंग लख जोजन सोय । रिजुविमान जा ऊपर होय ॥ सब शैलन में ऊँचो यहै । ग्रीव उठाय किधौं इम कहै ॥ करै कौन गिरि मेरी रीस । जिनपति न्हौन होय मुझ सीस ॥ चारों दिशि चारों गजदंत । नील निषधसां लगे महंत ॥ छह कुलपर्वत बड़े विथार । पूरब पश्चिम दीरघ सार ॥ आठ महा गिरि दिग्गज नाम । मेरु निकट आठोंदिशि ठाम ॥ कनक वरन सोलह वच्छार । महाविदेहविषैं छबिसार ॥ कंचनगिरि दीसै परवान । सीता सीतोदा तट थान ॥ कुरु भूमाहिं जमकगिरि चार । नील निषधके निकट निहार ॥ चार नाभिगिरि मिथ्या नाहिं । मध्यम जघनभोगभूमाहिं ॥ २० ॥ विजयारध पवर्त चौंतीस । इतने ही वृषभाचल दीस ॥ ते मलेच्छमधिखंडनविखैं । चक्री जहां नांव निज लिखैं ॥ यों गिरि दीपविषैं वरनये । ग्यारह अधिक एक सौ भये । भद्रशाल वन दोय सुवास । पूरव अपर मेरुके पास ॥ दो तरु जंबूसेंभलतने । उत्तम भोग भूमिमें बने ॥ छह द्रह बड़े कुलाचलसीस । पद्म महापद्मादिक दीस ॥ बोस सरोवर और सुनेह । सीता सीतोदामधि तेह ॥ उत्तम मध्यम जघन विशेश भोगभूमि छह कही जिनेश ॥ महादेश चौंतीस सुखेत । ऐरावत अरु भरत समेत ॥ इतनी ही नगरी परवान । आरजखंडमध्य थिर थान । उपसमुद्रकी संख्या यही । कछू विनाशिक कछु थिर सही ॥ पूरव दिशि दो बाग महंत । देवारण्य दीपके अन्त ॥ ऐसे ही पश्चिम दिश दोय । भूतारण्य नाम तिन होय ॥ गंगा

दिक सरिता दशचार। चौंसठ महाविदेहमझार॥ बारह विपुल विभंगा जेह। महानदी नब्बै सब येह॥ इतने ही सब कुंड महान। जहां तरंगिनि उतरैं आन॥ सत्रह लाख सबन परिवार। सहसछानवै ऊपर धार॥ यह सब जम्बूदीपसमास। आगममें विस्तार प्रकाश॥ दोहा—यही कथन अंगनविषैं, वरन्यौ गनधर ईश। तीनलाख पदमें सही, ऊपर सहस पचीस॥ ३०॥ चौपाई—यों अनेक रचना आधार। दीपराज राजै अधिकार॥ तहां मेरुके दच्छिन भाग। किधों भूमितिय सुभग सुहाग॥ भरतखंड छहखंड समेत। धनुषाकार विराजत खेत॥ तामें सबसुखधर्मनिवास। काशीदेश कुशलजनवास॥ गांव खेटपुर पट्टन जहां। धनकन भरे बसैं बहु तहां। निवसैं नागर जैनी लोय। दयाधर्म पालैं सब कोय॥ जिनमँदिर ऊंचे जिनमाहिं। नरनारी नित पूजन जाहिं॥ पद पद पुरपंकित पेखिये। उदवसथान न कहीं देखिये॥ नीर अगाध नदी नित बहैं। जलचर जीव जहां नित रहैं॥मुनिजनभूषित जिनके तीर। काउसग्ग धरि ठाड़े धीर॥ ऊंचे परवत झरना झरैं। मारग जात पथिक मन हरैं॥ जिनमें सदा कन्दराथान, निहचल देह धरैं मुनि ध्यान॥ जहां बड़े निर्जनवनजाल। जिनमें बहुविधि विरछ विशाल॥ कैला करपट कटहल कैर। कैथ करोंदा कौंच कनैर॥ किरमाला कंकोल कल्हार। कमरख कंज कदम कचनार॥ खिरनी खारक पिंडखजूर। खैर खिरहटी खेजड़ भूर॥ अर्जुन अँबली आँब अनार। अगर अंजीर अशोक अपार॥ अरनी औंगा अरलू भने। ऊंबर अंड अरीठा घने॥पाकर पीपल पुंग प्रियंग। पीलू पाटल पाढ़ पतंग॥ गौंदी गुड़हल गूलर जान। गांडर गुंजा गोरखपान॥ ४०॥ पंचा चीढ चिरोंजी फली। चंदन चोल चंबेली भली॥ जंड जँभीरी जामन कोट। नीम नारियल हींस हिंगोट॥ सौना सीसम सैंभल शाल। सालर सिरस सदा फलजाल॥ बांस बबूल बकायन बेर। बेत बहेड़ा बड़हल पेर॥ महुआ मौलसिरी मचकुन्द। मरुवा मोखा करना कुन्द॥ तूत तबोंलनि तींदू ताल। तगर तिलक तालीस तमाल॥ इहि विधि रहे सरोवर छाय। सबही कहत कथा बढ़ जाय॥ तहां साधु एकांत विचार। करैं पठनपाठनविधि सार॥ विविध सरोवर शीतल ठाम। पंथी बैठि लेहिं बिसराम॥ निर्मल नीर भरे मनहार। मानो मुनिचित विगतविकार॥ सोहैं सफल सालके खेत। भये नम्र फल

भारसमेत। सज्जनजन ज्यों संपति पाय । छोड़ गुमान चलैं सिर नाय ॥ केवलज्ञानी करत विहार। जहां सदा सबसुखदातार ॥ आचारज चहुसंघ-समेत। विहरमान भविजन हितहेत ॥ केई जहां महाव्रत लेहिं। भवदुखवास जलांजलि देहिं ॥ केई धीर उग्र तप करैं। ते अहिमिंद्र जाय अवतरैं ॥ केई श्रावकके व्रत पाल। अच्युत स्वर्ग बसैं चिरकाल ॥ केई कर जिनजज्ञ विधान। पावैं पुन्नी अमरविमान ॥ केई मुनिवरदानप्रभाव। भोगैं भोगभूमिकी आव ॥ अति-पुनीत सब ही विधि देश। जहां जन्म चाहैं अमरेश ॥ ५० ॥ तहां बनारस नगरी बसै, देखत सुरनरमन हुलसै। है प्रसिद्ध धरनीपर सोय, तीरथराज कहैं सब कोय ॥ शोभा जाकी कही न जाय, नाम लेत रसना शुचि थाय। जहां सरोवर नाना भांति, जिनके तीर तरोवर पांति ॥ निजजीवन जीवन सुख देहिं, कमलसुवास शिलीमुख लेहिं। सोहैं सघन रवाने बाग, फले फूल फल बढ़्यो सुहाग ॥ सजल खातिका राजै खरी, उठैं लहरि लोयन गति हरी। कोट उतंग कांगुरे लसैं, मानो सुरगलोक दिशि हंसैं ॥ ऊंचे महल मनोहर लगैं, सोरन कलश शिखर जगमगैं। अति उन्नत जिनमंदिर जहां, तिन महिमा बरनन बुध कहां ॥ रतनबिम्ब राजै जिहिमाहिं, शिखर सुरंग धुजा फहराहिं। कंचनके उप करन समाज, आवैं भविजन पूजाकाज ॥ जय जय शब्द सहित छबि छजै, किधौं धर्म रयणायर गजै। नगरनारि नित वंदन जाहिं, जिनदर्शन उच्छव उरमाहिं ॥ भूषनभूषित सुन्दर देह, मानो सुभग अपछरा येह। सब ग्रहस्थ साधैं षट कर्म, पालैं प्रजा अहिंसाधर्म ॥ दोष अठारहवरजित देव, तिस प्रभुको पूजैं बहु भेव। चाह चिनग वरजित जो धीर, सोई गुरु सेवैं बरवीर ॥ आदि अंत जे विगत विरोध, तेई ग्रंथ सुनैं मनसोध। सत्य शील गुन पालैं सदा, तातैं लोग सुखी सर्वदा ॥ ६० ॥ दोहा—प्रजा बनारस नगरकी, नागर नीत सुजान चार रतनके पारखी, लहिये घरघर थान ॥ देव धर्म गुरु ग्रंथ ये, बड़े रतन संसार। इनको परखि प्रमानिये, यह नर भव फल सार ॥ जे इनकी जानै परख, ते जग लोचन वान। जिनको यह सुधि ना परी, ते नर अंध अजान ॥ लोचनहीने पुरुष सो, अंध न कहिये भूल। उर लोचन जिनके मुंदे, ते आंधे निर्मूल ॥ चौपाई-इहि विधि नगर बसैं बहु भाय, सब शोभा वरनी नहिं जाय। अश्वसेन भूपति

बड़ भाग, राज करै तहाँ अतुल सुहाग ॥ काश्यिपगोत्र जगतपरशंस, वंश इक्ष्वाक विमलसरहंस । तेजवंत दिनपति ज्यों दिपै, प्रभुता देखि शचीपति छिपै ॥ कलपतरोवर सम दातार, रतिपति लाजै रूप निहार । रयनायर सम अति गंभीर, पर्वतराज बराबर धीर ॥ सोम समान सबन सुखदाय, कीरति किरन रही जगछाय । तीन ज्ञानसंजुक्त सुजान, परम विवेकी दयानिधान ॥ जिनपद भक्ति धर्म धन वास, गुरुसेवारति नीतिनिवास । कलाचातुरी बुधि विज्ञान, विद्या विनय संपदा थान ॥ सकल सारगुनमानिककोष, उभय पच्छ निर्मल निर्दोष ॥ जिन सूरजउदयाचल राय । तिस महिमा वरनी किमि जाय ॥ बामादेवी नाम पवित्त । तिनके घर रानी शुभ चित्त ॥ निरुपम लावन सब गुन भरी । रूपजलधिवेला अवतरी ॥ नखशिख सहज सुहागिनी नार । तीनलोक तियतिलक सिंगार ॥ सकल सुलच्छन मंडित देह । भाषा मधुर भारती येह ॥ रम्भा रति जिस आगे दीन । रोहिनि रूप लगै छबि छीन । इन्द्र बधू इमि दीसे सोय । रविदुति आगे दीपकलोय ॥ जनमनहरष बढ़ावन एम, कातिकचन्द्र चन्द्रिका जेम । सकल सार गुनमनिकी खानि, शीलसम्पदा की निधि जानि ॥ सज्जनताकी अवधि अनूप, कला सुबुधिकी सीमारूप । नाम लेत अघ तजै समीप । महापुरुषमुक्ता फल सीप ॥ त्रिभुवननाथ रत्नकी मही । बुधिबल महिमा जाय न कही ॥ बहु विधि दम्पति सम्पति जोग । करैं पुनीत पुन्यफल भोग ॥ उक्तं च षट्पाहुड़ग्रन्थे आर्या—तित्थयरा तप्पियरा हलहर चक्कांई वासदेवाँई, पडिवास भोय भूमिय आहारोणत्थिणीहारो ॥ चौपाई—जिनवर जिनमाता जिनतात, वासदेव बलदेव विख्यात । चक्रीराय जुगलिया जोय । इन सबके मल मूत्र न होय ॥ दोहा—पूरव गाथाको अरथ, लिख्यो चौपाई लाय । षटपाहुडटीकाविषै, देख लेउ इहि भाय ॥ चौपाई—अब आगे भविजन मन थंभ, सुनो गर्भमंगल आनन्द । एक दिना सौधर्म सुरेश, धनपति प्रति दीनो उपदेश । ८० । आनतेंद्रकी थितमें सही, आयु छ मास शेष सब रही । तेवीसम अवतार महान, होसी नगर बनारस थान ॥ अश्वसेन भूपतिके धाम, पंचाचरज करो अभिराम । यह सुरेन्द्र ने आज्ञा करी, सो कुबेर निज माथैं धरी ॥ चल्यौ तुरत लाई नहिं बार, सोहै संग अमर परवार । हरषित

अंग पिता घर आय, करी रतन वर्षा बहुभाय। जिनके तेज तिमर नहिं रहै, नाना वरन प्रभा लहलहै। ऐसे निर्मोलक नग भूर। वरषैं नृपके आंगन पूर॥ दोहा—नभसों आवैं झलकती, मनिधारा इहि भाय। सुरगलोक लछमी किधौं सेवन उतरी माय॥ चौपाई—साढ़े तीन कोड़ परवान, यों नित वरषै रतन महान। सुरभि सुगंध कल्पतरु फूल, वरषावैं सुर आनन्दमूल॥ गंधोदककी वरषा करै। मानो मुकताफल अवतरैं॥ प्रतिदिन देव दुंदभी वजैं। किधौं महासागर यह गजैं॥ नंद वरद जयजय उच्चरैं, मात पिता प्रति सुर यौं करैं। इहिविधि पंचाचरन विलोक, जैनी भये मिथ्याती लोक॥ दोहा—देवन किये छ मास लौं, पंचाचरज अनूप। देखि देखि परजा भई, आनन्द अचरज रूप॥ चौपाई—यों अति आनन्द सों दिन जाहिं, माता मगन सुखोदधिमाहिं। मानिकजटित मनोहर धाम। रत्न पलंक सेज अभिराम। ९०। मणिमय दीप जहां जगमगैं, अति सुगन्ध आवत अलि पगैं। करि चतुर्थ आनन्द स्नान, करैं शयन जननी सुखमान॥ पच्छिम रैन रही जब आय, सोलह सुपनें देखे माय। तिनको नाम लिखो अवलोय, पढ़त सुनत पातक छय होय॥ पद्धडी—सुपनावलि सोलह सुनहु मीत, जिनराज जन्म सूचक पुनीत। ऐरावत हाथी प्रथम दीस। मदगोली गंड विशाल सीस॥ देख्यो डक्कारत वृषभराज, अतिउज्जल मोतीवरन भ्राज। देख्यो पंचानन धवलदेह, निज नाद करै ज्यौं शरदमेह॥ देख्यो मणिआसन शोभमान, तहँ हेमकलश कमलासनान। देखी दो पावन पहुपमाल, भ्रमरावलि बेढ़ी अतिविशाल॥ रविमंडल देख्यो तम दलन्त, उदयाचल ऊपर उदयवंत। संपूरन तारापति विमान, ताराचल मध्य विराजमान॥ जल तिरत मनोहर मीन जोट, देखे जिनजननी पलक ओट। देखे चामीकर कलश दोय। अति झलकैं वारिज चढ़केसोय॥ देख्यो कमलाकर कमलछन्न बहु हंसी हंसनसों रवन्न। देख्यो रयणायर गर्जमान, पुनि सिंहपीठ मानिकनिधान॥ फिर देख्यो देव विमान जोग, धुज घंटा झालरसों मनोग। प्रगट्यो महि फोरि फनेंद्रधाम, मणि कंचनमय नयनाभिराम॥ पुनि रत्नराशि देखी अनूप, इंद्रायुध वरन विचित्ररूप॥ निर्धूम धनंजय दीपमान। ये देखे सोलह सुपन जान॥ १००॥ दोहा—गजप्रवेश मुखकमलमें, सुपनअन्त अविलोय।

सुखनिद्रा पूरी भई, भयो प्रात तम खोय ॥ दोहा—पूर्व दिवाकर ऊगयो, गयो निमिर दुखदाय। जैसेजैनसिद्धान्त सुनि, भरमभाव मिटजाय ॥ मन्दतेज तारे भये, कछु दीखे कछु नाहिं। ज्यों तीर्थंकरके उदय, पाखण्डी छिप जाहिं ॥ सूरजवंशी जे कमल, खिले सरोवर माहिं। ज्यों जिनबिम्ब बिलोकिके, भवि लोचन विकसाहिं ॥ चन्द विकाशी कमल जे, विकसत भये न सोय। ज्यों अजान जिन वचन सुनि, मुदित मूलनाहिं होय ॥ चक्रवाक हरषत भये, ज्यों जिनमत संयोग। जीव सुमति पिय नारिको, मिट्यो अनादि वियोग। घूघूगण भूतल विषै, आंधे भये असूझ ॥ जैनग्रंथके रहसमें, ज्यों परमती अबूझ ॥ कमलकोष मधुकर बंधे, छुटे जग्यो सिर भाग। यथा जीव जिनधर्मसों, मुक्त होय भवत्याग ॥ पथिक लोग मारग चले, सूझे घाट कुघाट। जिनधुनि सुनि सूझै यथा, स्वर्गमुक्तिकी बाट ॥ इहिविधि भयो प्रभात शुभ, आनन्द भयो अतीव ॥ धर्म ध्यान आराधना, करन लगे भवि जीव। ११०। जिनजननी रोमांचि तन, जगी मुदित मुख जान। किधौं सकंटक कमलनी, विकसी निशि अवसान ॥ मंगलीक वाजित्र धुनि, सुनि वन्दीजन गान। उठी सेज तजि सुखभरी, धर्यो हिये शुभ ध्यान ॥ सामायिकविधि आदरी, पंच परमपदलीन। और उचित आचार सब, स्नान विलेपन कीन ॥ पहरे शुभ आभरन तन, सुन्दर वसन सुरंग। कलपबेल जंगम किधौं, चली सखीजन संग ॥ राजसिंहासन भूप तब, बैठे सभा सुथान। देवी आवत देखिकै, कियो उचित सनमान ॥ अर्धासन बैठन दियो, जोग वचन मुख भास। यों रानी विकसत वदन, बैठी भूपति पास ॥ सभालोल तारे विविध, भूपति चांद सरूप ॥ श्रीवामादेवी तहां, दिपै चन्द्रिकारूप ॥ स्वामी सोलह सुपन हम, देखे पश्चिम रैन। श्रीमुख तें इनको सुफल, कहो श्रवनसुख दैन ॥ अश्वसेन भूपाल तब, बोलो अवधि विचारि। एकचित्त करि देवि तुम सुनो सुपन फल सार ॥ चौपाई—धुरि गजेन्द्रदर्शनतैं जान। होसी जगपति पुत्र प्रधान ॥ महावृषभ पुनि देख्यो सोय जगजेठो नन्दन तुम होय ॥१२०॥ श्वेतसिंह दरशनफल भास। अतुल अनंती शक्तिनिवास ॥ कमलामज्जनतैं सुरईश। करे न्हौन कनकाचलशीस ॥ पद्मपदाम दो देखीं सार। तिसफल दुविध धर्मदातार ॥ शशितैं सकल लोक सुखदाय।

तेजपुंज सूरजतैं थाय ॥ मीन युगलतैं सब सुखभाज । कुम्भ विलोकनतैं निधि राज ॥ सरवरतैं सब लक्षणवान । सागरतैं गम्भीर महान ॥ सिंहपीठतैं मृग-लोचनी । होय बाल तुम त्रिभुवन धनी ॥ सुरविमान देख्यौ सुख पाय ! स्वर्ग-लोकतैं उपजौ आय ॥ नागराज ग्रहको सुन हेत । जन्मै मति श्रुति अवधि समेत ॥ रत्नराशितैं गुनमनिथान । कर्मदहन पावकतैं जान ॥ गजप्रवेश जो वदनमझार सुपन अन्त देख्यौ वरनार ॥ श्रीपारसजिन जगत प्रधान । गर्भ तुम्हारे उतरे आन ॥ दोहा—सुनि वामादे सुपनफल, रोमांचित तन भूर ॥ सुवचन जल सींचत किधौ, उगे हरष अंकूर ॥ चौपाई—अब सौधर्म सुरेश विचार । स्वामी गर्भ अवसर निरधार ॥ कुलगिरिकमबवासनी जेह । श्रीआदिक देवी गुनगेह ॥ तिन्हैं बुलाय कह्यौ शुभ भाव । अश्वसेन भूपति घर जाव ॥ वामादेवीके उर-धान । तेवो सम जिन उतरे आन ॥ तिनकी गर्भशोधना करो । निज नियोग सेवा मन धरो ॥ यह सुनि अब आनन्दित भईं । इन्द्रआन माथे धर लईं ॥ स्वर्गलोक तजि आई तहां । बसौ बनारसि नगरी जहां ॥ महाकांत तन लावन भरीं । मानो नभ दामिनि अवतरीं ॥ अंग-अंग सब सजे सिंगार । रूप सम्पदा अचरजकार ॥ चूड़ामनि माथे जगमगै । देखत चकाचौंध सी लगै ॥ सुरतरु-सुमनदाम उर धरी । अति सुवास दशदिशि विस्तरी ॥ श्रवनसुखद नेवर-झंकार । शोभा कहत न आवै पार ॥ आय नृपतके पायन नई । आयस मांगि महलमें गई ॥ सिंहासन थित माय निहार । करि प्रनाम कीनो जैकार ॥ दोहा—जननीदेह सुभावसों, अतिनिर्मल अविकार । ताहि कुलाचलवासनी, और करैं शुचिसार ॥ कृष्णपाख वैशाख दिन, दुतिया निशि अवसान । विमल विशाखा नखतमें, बसे गर्भजिन आन ॥ जथा सीप सम्पुटविषैं, मोती उपजै आन । त्योंही निर्मल गर्भमें, निराबाध भगवान ॥ गर्भ बसैं पर गर्भतैं, बरतैं भिन्न सदीव । घटतैं घटवरती गगन, क्यों नहिं भिन्न अतीव ॥ चौपाई—तब जिन पुन्यपवनवश हले । चहुंबिधि सुरके आसन चले ॥ चिह्नदेख इन्द्रादिक देव । जानों अवधिज्ञानबल भेव ॥ जिनवर आज गर्भ अवतरे । यह विचार उर आनन्द भरे ॥ चढ़ि विमान परिवार समेत । चले गर्भकल्यानक हेत । १४० । जयजयकार करत बहुभाय । उच्छव सहित पिताघर आय ॥ मातपिता आसन

पर ठये। कंचन कलश नहावत भये॥ गर्भमध्यवरती भगवान। प्रणमें देव धरो मन ध्यान॥ गीत निरत बाजित्र बजाय। पूजा भेंट करी सिरनाय॥ यों सुरगन सब साधि नियोग। गये गेह करि कारज जोग॥ इन्द्रराजको आयस पाय। रुचकवासिनी देवी आय॥

जथाजोग सब सेवा करैं, छिन छिन जिनजननीमन हरैं। रुचक दीप तेरहमो जहाँ, रुचकनाम पर्वत है तहाँ॥ सो चौरासी सहस प्रमान, इतने जोजन उन्नत जान। इतनो ही विस्तीरनधार, दीप मध्यसों बलयाकार॥ ताके शिखर कूट बहु लसैं दिशाकुमारी तिनमें बसैं। ते सब सेवन आवैं माय, यह नियोग इनको सुखदाय॥ कुसुमलता-आई भक्ति निहोगिनि देवी, जिन जननीकी सेव भजैं। कोई न्हान विलेपन ठानैं, कोई सार सिंगार सजैं॥ कोई भूषन वसन समर्पैं, कोई भोजन सिद्ध करैं। कोई देय तँबोल रवाने, कोई सुन्दर गान करैं। कोई रत्न सिंहासन थापैं, कोई ढालैं चमर बरो। कोई सुन्दर सेज बिछावैं, कोई चापैं चरन करो॥ कोई चन्दनसों घर सीचैं, सारे महल सुवास करी॥ कोई आँगन देय बुहारी, झारैं फूल पराग परी॥ १५०॥ कोई जलक्रीड़ा कर रंजैं, कोई बहु विधि भेष किये। कोई मनि दर्पन कर धारैं, कोई ठाड़ी खड़ग लिये॥ कोई गूंथि मनोहर माला, आवैं आन सुगंध खरी। कोई कल्पतरोवरसों ले, फल फूलनकी भेट धरी॥ कोई काव्य कथारस पोखैं, कोई हास्य विलास ठवैं। कोई पावैं बीन बजावैं, कोई नाचत सीस नवैं॥ दोहा—इहि विधि सेवा करत नित नवैं मास शुभ श्रेय। प्रश्न करैं सुरकामिनी, माता उत्तर देय॥ अंतरलापि पहेलिका, बहिरलापिका एव। बिंदुहीन निरहोठपद, क्रियागुप्ति बहुभेव॥ इत्यादिक आगमउकत, अलंकारकी जात। अर्थगूढ़ गंभीर सब, समझावैं जिन मात॥

चौपाई—तुमसी त्रिया कौन जग आन, तीर्थंकर सुत जनै महान। जगमें सुभट कौनसे माय, जे सर जीतैं विषय कषाय॥ कौन कहावै कायर दीन, इन्द्रीमदमेटन बलहीन। पंडित कौन सुमारग चलै, दुराचार दुर्मारग दलै॥ माता सूरख कौन महंत, विषयी जीव जगत जयवंत, कौन सत्पुरुष नर भव धार जो साधै पुरुषारथ चार॥ कौन कापुरुष कहिये मर्म, जो शठ साधन जानै धर्म। धन्य कौन नर इस संसार, योवन समय धरैं व्रतभार॥ १६०॥ धिक किनको

कहिये संवेग, जो धर करै प्रतिज्ञा भंग। कौन जीवके बैरी लोय, काम क्रोध हैं और न कोय॥ जननी जगमें कौन मलीन, पातकपंकमलिन मतिहीन। कहो कौन नर नित्त पवित्त, ब्रह्मचर्यधारी दृढ़चित्त॥ कौन पशू मानुष आकार। जिन के हिरदै नाहिं विचार। अंध कौन जो देव अदेव, कुगुरुसुगुरुको भेद न भेव॥ बधिर कौनसे उत्तर देह, जैनसिधाँत सुनै नहिं जेह। मूकनाम नर कैसैं लहैं, जो हित सांच वचन नहिं कहै॥ लाँबी भुजा कौन करहीन, जिनपूजा मुनि दान न दीन। कौन पाँगले पाँवसमेत, जो तीरथ परसैं न अचेत॥ कौन कुरूप जननि कहु एह, शीलसिंगार विना नरजोह। वेग कहा करिये बड़ भाग, दिच्छागहन जगतको त्याग॥ मित्र कौन हितवंछक होय, धर्म दिढ़ावै आलस खोय। शत्रु कौन जो दिच्छालेत, विघन करै परभवदुखहेत॥ जियको कौन शरन है माय, पंचपरमगुरु सदा सहाय। इहिविधि प्रश्न करैं सुरनारि, माता उत्तर देहिं विचारि वामादेवी सहज प्रवीन, सकल मरम जानै गुनलीन। पुरुषरतन उरअन्तर बहै, क्यों नहिं ज्ञान अधिकता लहै॥ दोहा—निवसैं निर्मल गर्भमें, तीन ज्ञान गुनवान, फटकमहलमें जगमगै, ज्यों मनि दीप महान॥ १७०॥ उदयवान दिनकर समय, पूर्व दिशा छवि तेम, त्रिभुवनपति सुत उरधरैं, सोहत जननी एम॥ गर्भभार व्यापै नहीं, त्रिवली भंग न होय, देह न दीखै पीतछवि, और विकार न कोय॥ ज्यों दर्पन प्रतिबिंबसों, भारी कह्यो न जाय, त्यों जिनपतिके गर्भसों खेद न पावै माय॥ कल्पलतासी ललत अति, जननी छविसंयुक्त। मंदहास कुसुमित भई, अब फलि है फल पुत्त॥ देवराजके वचनसों, अहनिश हर्षत अंग अलखरूप सेवै शची लिये अपछरा संग॥ पूरववत नवमास लों पंचाचरजा अनूप॥ अश्वसेन भूपालघर, किये धनद सुखरूप। यों सुखसों निशदिन गये, खेद नायकहिं नहिं॥ यह सब पुन्य प्रभाव है यही रहस इसमाहिं॥

इति श्री पार्श्वपुराण भाषायां गर्भावतारवर्णनं नाम पंचमोऽधिकारः

## अथ षष्ठोऽधिकारः

दोहा—रागादिक जलसों भरो, तन तलाब बहु भाय। पारस रवि दरसत सुखैं, अघ सारस उड़ि जाय॥ गर्भ मास पूरन भये, नभ निर्मल आकार। पौष मास एकादशी, श्याम पच्छ शुभ बार॥ वामादेवी पूर्व दिशि, जनम्यो

जिनवर भान। मुदित भयो त्रिभुवन कमल, अशुभतिमिर अवसान॥ अश्वसेन नृप उदयगिरि, उगयो बाल दिनेश। तीन ज्ञान किरनावली, लिये जगत परमेश॥ पद्धडी—जनम्यो जब तीर्थंकर कुमार। तिहुंलोक बढ़्यो आनन्द अपार॥ दीखै नभनिर्मल दिशि अशेश। कहिं आँधी मेह न धूलि लेश अति शीतल मंद सुगंधि वाय। सो बहन लगी सुख शांति दाय॥ सब सुजन लोक हरषे विशेष। ज्यों कमल खंड प्रगटत दिनेश॥ घंटा घन गरजे देव लोक, ज्योतिषघर केहरिनाद थोक॥ भवनालय बाजे सहज संख। वितरनिवास भेरी असंख॥ ये अनहद बाजे बजे जान। जिनराज जन्म अतिशय महान॥ बहु कल्पतरोवर पहुपवृष्टि। स्वयमेव करन लागे विशिष्टि॥ इन्द्रासन कांपे अकसमात। ये करन किधौं सारथ सुजात॥ जिनजन्म भयो भूलोकमाहिं। उचासन अब तुम जोग नाहिं॥ आनम्र भये मणिमुकट एम। श्री जिनप्रति करत प्रनाम जेम॥ ये चिह्न देखि इन्द्रादिदेव। तब अवधिज्ञानबल जाल भेव॥१०॥ निरधार बनारसि नगरथान। तीरथपति जनम्यो आज आन॥ प्रभुजन्मकल्यानक करन काज। उद्यम आरंभ्यो देवराज॥ परवार सहित सब इन्द्र नाम। आये मिल प्रथम सुरेन्द्र धाम॥ नानाविधि बाहन चढ़े जेह। जिन भक्तिसलिलसिंचतसुदेह॥ सप्तांग सैन तब चली एम। यह महाजलधिकी लहर जेम॥ हाथी रथ पायक वृषभवाज। गायनि निर्तकि सेनासमाज॥ एकेक सैनमें सात कच्छ। तिहिमाहिं प्रथम चउ असी लच्छ॥ फिर दुगुन दुगुन सात लौं जान, इस भांत सात सेना महान॥ सौ कोर और छैकोर जोरि। अठसट्ठ लाख ऊपर बहोरि॥ यह एकहस्ति सेनाप्रमान। ऐसी ही सब सातों समान॥ तहं नागदन्त सुर आभियोग। सो करत विक्रिया निजनियोग॥ ताप्रति आज्ञा दीनी सुरिन्द। तिन कीनों ऐरावत गइन्द॥ लख जोजन मान मतंगईस। अति उन्नत देह उतंग सीस॥ शुभसेतवरन मन हरन काय। लीलागति धारै ललित पाय॥ मदजीवन कलित कपोल श्याम। नख विद्र मवर्ण मनोभिराम॥ सब लसत सुलच्छन अंग अंग। नहिं गिनी जाहिं जिस छवि तरंग॥ गंभीर घना घन घोष जास। बहु सुन्दर सुण्ड सुगंध सांस। सो काम सरूपी कामगौन, जादेखैं मोहत तीन भौन॥ घनघोरत घंटा लम्बमान, मणि घूंघुरमाला कंठ-

थान । सोवनपाखर सो दिपै देह, संपाजुत मानो शरद मेह । २० । सौ वदन विराजत शोभवन्त एकेक वदनमें आठ दन्त ॥ प्रतिदन्त सरोवर एक दीस । सरसरहं कमलनी सौ पचीस ॥ एकेक कमलनी प्रति महान, पचीस मनोहर कमल ठान । प्रति कमल एक सौ आठपत्र । शोभावरनी नहिं जाय तत्र ॥ पत्रनपर नाचैं देवनार, जगमोहत जिनकी छबि निहार । नवनवरस पोषैं करत गान, लावन्यजलधि वेलासमान । तिस हाथी ऊपर शचीसंग, सौधर्मसुरग-पति मुदित अंग । आरूढ़ भयो अति दिपत एम । उदयाचलमस्तक भानु जेम चन्द्रोपम चामर छत्रशीश, दशजाति कल्पसुर सहित ईश । ईशानप्रमुख इमि देवराज । निज निज बाहनको चले साज ॥ परिजनसमेत उर हरषभाव । जिन जन्म कल्यानक करन चाव ॥ बाजे सुरदुन्दुभि विविध भेव, जयकार करैं मिलि सकल देव ॥ उपज्यो कोलाहल गगन थान, सब दिशि दीखैं बाहन विमान । आकाशसरोवर अति गंभीर, इन्द्रादि अमर तन तेज नीर ॥ तहां विकसत मुख अपछरा एम, यह खिल्यो कमलनीबाग जेम । इहिविधि देवागम भयो जान, अवतरे बनारस नगर थान ॥ चन्द्रादि जोतिषी पंच जान, दश भेद भवनवासी विख्यात । पुनि आठ जातके वान देव । सब आये इन्द्र समेत ऐव ॥ निज निज बाहन चढ़ि सपरिवार, जिन जन्म महोच्छव हिये धार । तब पुरप्रदच्छना सुरन दीन, अति हरषत उर जयकार कीन । ३० । वन वीथी मारग गगन रोक, सब ठाड़े देवी देव थोक । सब शक्रशची मिलि भूप गेह, आये घर आंगन भरो तेह ॥ तब इन्द्रबधू अति रंजमान । सो गई गुप्त जिन जन्मथान ॥ देखी जिनमात सपुत्त ताम, परदच्छन दै कीनों प्रनाम ॥ सुनराग रंगी सुखसेजमांझ, ज्यों बालक भानु समेत सांझ । कर जोरि जुगल सिर नाय नाय, थुति कीनी बहु जानै न माय ॥ सुखनींद रची तब शची तास, मायामय राख्यो पुत्र पास । करकमलन बालकरतन लीन, जिन कोटभानुछबि छीन कीन ॥ सुख उपजै जो प्रभु परस देह, कविवानीगोचर नहिं तेह । प्रभुको मुखवारिज देख देख, हरषै सुररानी उर विशेख ॥ वसु मंगल दरव विभूति सार, दिश दिव्य कुमारी अग्रचार । इहिविधि सौ धर्म सुरेशनार, आन्यो शिवकन्या वर कुमार ॥ देख्यो हरिबालकचन्द जाम, आनन्दजलधि उर बढ्यो

ताम ॥ शिरनाय इंद्र निज बार बार, थुति कीनी कर जुग शीस धार छवि देखि नृपति नहिं होय लेश, तब सहस आंख कीनी सुरेश। करि नमस्कार निजगोद लीन्ह, ईशान इन्द्र शिर छत्र दीन्ह ॥ तहां सनत्कुमार महेंद्र सोय ॥ ए चामर ढालैं इन्द्र दोय। ब्रह्मादि सुरगवासी सुरेश। जय नन्द बर्ध बोलैं विशेष ॥ नाचें सुररमनी रूपखान, गंधर्व करैं जिन सुजसगान। सुरबाजो बाजैं बहुप्रकार, कर धरहिं किन्नरी बीन सार। केई सुर श्रीजिन सुभग भेष, देखैं भरि लोचन निर्निमेष। केई यों भाषैं सुरसमाज, हम देव जन्मफल लह्यो आज ॥ कोई शरधायुत भये देव, मिथ्यात महाविष वन्यो एव। इस भांति चतुर विधि देवसंघ। सब चले जोतिषीपटल लंघ ॥ दोहा—जोजन सहस निन्यानवै, सुरगिरि शिखर उतंग, गये सकल सुरगन तहां, भूषण भूषित अंग चौपाई—मेहामेरुके मस्तक भाग, पांण्डुकवन बहु धरै सुहाग। जोजन सहस जासु विस्तार, सुर चारन खग करैं बिहार ॥ चहुंदिशि चार जिनालय तहां। सघन सासते तरुवर जहां, मध्य चूलिका मुकट सरीर, सो उतंग जोजन चालीस ॥ बारह जोजन जड़ विस्तार, आठमध्य अर ऊपर चार। जाके ऊपर रजाक विमान, रोमांतर नरक्षेत्र प्रमान ॥ तिस ईशान दिशा शुभ थान, मनिमय शिला सासती जान। पांडुकनाम फटिक उनहार, आकृति अर्ध चन्द्रमाकार ॥ सौ जोजन आयाम अभंग, विस्तर आधी आठ उतंग। सुरविद्याधर पूजत नित्त, भरतखण्ड जिन न्हौन पवित्त ॥ तहां हेमसिँहासन सार, रत्नजड़त सो वलयाकार। धनुष पांच सौ उन्नत जोय भूमिभाग विस्तीरन सोय ॥ ऊपर जास अर्ध विस्तार, जाके तेज मिटै अंधियार। तिसही पर पदमासन साज, पूरव मुख थापे जिनराज। ५०। इस औसर सोहैं इमिईश, मानो मेघ रतन गिरि शीश। धुजा कलश दर्पन शृंगार, चमरछत्र सुप्रतिष्टक तार ॥ मंगल दर्व मनोहर जहां। धरे अनानि निधन ये तहां। आसन दोय उभय दिश और जुगलइन्द्र ठाड़े तिहिं ठौर ॥ चारों दिश चारों दिगपाल। जथा जोग जिन-मज्जन काल। शची सुरेन्द्र अपछरा थोक सब ठाढ़े पांडुक बन रोक। चौविधि देव खड़े चहुंपास। जनम न्हौन देखन हुल्लास ॥ कियो महामंडप हरि तहां। तीनलोक जन निवसैं जहां ॥ कल्पकुसुममाला मनहार। लटकैं मधुप करैं

झंकार ॥ सुर वाजित्र बजैं बहुभाय। सुरभि सुगंध रही महकाय ॥ मंगल मिल गावैं सब शची। नाचैं सुर वनिता रस रची ॥ तब मज्जन आरम्भ विशेष। उद्यम कियो प्रथम अमरेश ॥ दोहा—तहां कुबेर रतन खची, रची पैंडका पंत। मेरु शिखरसों सोहिये, छीरोदधि पर जंत ॥ सुर श्रेणी सोपान पथ, पंचम सागर जाय। भर लाई कंचन कलश, चंदन चरचित काय ॥ जोजन एक प्रमानमुख, वसु जोजन गंभीर। यह मरजादा कलशकी, जिनशासनमें बीर ॥ सुकतमाल मंडित लसैं, कंचन कलश महंत ॥ नभवनिताके उरज ये, यों अति शोभावंत। ६०। चौपाई—सहस भुजा सुरपति तब करी। भूषन भूषित शोभाभरी ॥ इस औसर हरि सोहैं एम। भूषनांग सुरतरुवर जेम ॥ कलश हाथ हरि लीने जाम। भाजनांग सम शोभा ताम ॥ तीनबार कीनो जयकार। कलशोद्धरन मंत्र उच्चार ॥ इहिंविधि श्रीसौधर्मधीश। ढाले कलश स्वामिके शीश ॥ तब सब इन्द्र कियो जिनन्हौन। अतुल उछाव बढ़्यो जग भौन ॥ महाधार जिनमस्तक ढरी ! मानों नभ गंगा अवतरी ॥ मुदित असंख अमरगन तबै। जै जै कार कियो मिलि सबै ॥ उपज्यो अति कोलाहल सार। दशदिश वधिर भईं तिहिं बार ॥ भयो असम औसर इहिं भाय। वचनद्वार वरनो नहिं जाय ॥ जाधारासों गिरिशिखर, खंड खंड हो जाय। सो धारा जिनदेहपै, फूलकली सम थाय ॥ अप्रमान वीरजधनी, तर्थंकर प्रभु होय। तातें तिनको शक्तिको, उपमा लगै न कोय ॥ नील वरन प्रभु देहपर, कलश नीर छवि एम। नीलाचलसिर हैंमके, बादल वरषैं जेम ॥ चली न्हौनके नीरकी, उछल छटा नभमाहिं। स्वामीसंग अघविन भई, क्यों नहिं ऊरधजाहिं ॥ न्हौन छटा तिरछी भई, तिन यह उपमा धार। दिग वनिता मुख सोहियै, करनफूल उनहार। ७०। सोरठा—जिनतनपरस पवित्त, भई सकल जग शुचिकरन। सो धारा मम नित्त, पाप हरो पावन करो ॥ चौपाई—यों सुरेन्द्र मज्जनविधि ठान फिर कीनौं गंधोदकन्हान ॥ सो जल लेय विनय विस्तरी। शांतपाठ पढ़ि पूजा करी ॥ शक्र शची सुर आनन्द भरे। यथा जोग सब कारज करे। परदच्छन दीनी बहुभाय। बारम्बार नये सिरनाय ॥ हरिगीतका—सौधर्मपति अभिषेक कारन, न्होन पीठ सुदंसनो। गंधर्व गायनि निरतकारक अपछरा जनशंसनो ॥

पँचम पयोनिध न्हौन कुंड, असंख सुर सेवक जहां ॥ तिस जन्ममंगलकी बड़ाव, कहन समरथ बुध कहाँ ॥ चौपाई—जन्महौनविधि पूरन भई। सकल सुरासुर देवनि ठई ॥ अब इन्द्रानी जिनवर अंग। निर्जल कियो वसन शुचि संग ॥ कुंकुमादिलेपन बहु लिये। प्रभुके देह विलेपन किये ॥ इहि शोभा इस औसरमांझ। किधौं नीलगिरि फूली सांझ ॥ और सिंगार सकल सह कियो। तिलक त्रिलोकनाथके दियो ॥ मनिमय मुकुट शची सिर धरो। चूड़ामनि माथे विस्तरो ॥ लोचन अंजन दियो अनूप। लहजस्वामिदृग अंजित रूप ॥ मनिकुण्डल कानन विस्तरे। किधौं चन्द सूरज अवतरे ॥ कंठ कंठिका मोती हार। मुक्तिरमणि झूला उनहार ॥ भुज भूषण भूषित भुज करी। कटक मुद्रिका शोभित खरी ॥ कटि भूषन कीनो कटि थान। मनिमय छुद्र घंटिकावान पग नेवर पहराये सार ॥ जिनमें रतन झलक झंकार। ८०। दोहा—अंग अंग आभरन जत, यह उपमा तिहिं काल ॥ सुरतरुसम प्रभु सोहिये, भूषनभूषित डाल। चौपाई—तब इन्द्रादि लगे थुति करन। जय जिनवर सब आरत हरन ॥ त्रिभुवन भवन दीप उनहार। धन्य देव तेरो अवतार ॥ जय श्री अश्वसेनकुल चंद। वामानन्दन जोति अमंद ॥ सुखसागरके वर्धन हार। सब जग श्रेय शांति दातार ॥ तुम जग भ्रमनाशन अवतरे। हमसे दास महासुख भरे ॥ विन रवि उदय तिमिर क्यों जाय। कैसे कमलबाग विकसाय ॥ मिथ्यामत रजनी अति घोर। मूसैं धर्म कुलिँगी चोर ॥ जो प्रभु जन्म प्रभात न थाय। तो किमि प्रजा बसै सुखपाय ॥ ये अनादि संसारी जीव। विलखैं भवगद ग्रसे अतीव ॥ सो दुखमेंटन दयानिधान। राजवैद जनमें भगवान ॥ भरमकूपवरती बहु लोय काढ़नहार तिन्हैं नहिं कोय ॥ श्रीमुखवचन तेज बल धार। अब उद्धार लहैं निरधार ॥ आप परम पावन परमेश। औरनको शुचि करहु विशेष ॥ ज्यों शशि सेत प्रभा तन धरैं। सेत सरूप सबनको करैं ॥ विन स्नान तुम निर्मल नित्त। अंतर बाहज सहज पवित्त ॥ हम मज्जनविधि कीनी आज, निज पवित्र कारन जिनराज ॥ तुम जगपति देवनके देव। तुम जिन स्वयंबुद्ध स्वयमेव ॥ तुम जग रक्षक तुम जगतात। तुम विनकारन बंधु विख्यात। ९०। तुम गुनसागर अगम अपार। थुतिकर कौन जाय जन पार ॥ सुच्छम ज्ञानी मुनि

नहिं तरैं। हमसे मंद कहा बल धरैं ॥ नमो देव अशरन आधार। नमो सर्व अतिशय भंडार ॥ नमो सकल शिवसंपतिकरन। नमो नमो जिन तारन तरन ॥ दोहा—इहि विधि इन्द्रादिक अमर, सुरपदवी फल लेय। जन्म न्हौन विधिकर चले, मानो निज शुभ श्रेय ॥ जन्म महोच्छव देखकर, सुरपतिकी परतीत। बहु सुर सरधानी भये, तजि सरधा विपरीत ॥ चौपाई—तब सब देव जनमपुर थान। पूरवली विधि कियो पयान ॥ चढ़यो इन्द्र ऐरावत शीश। गोद लिये त्रिभुवन पति ईश ॥ पूरववत दुंदभि धुनिगाज ॥ वे ही गीत निरत सब साज। आये जय जय करत अशेष। पिताभवन कीनों परवेश ॥ मनिमय आँगनमें हरि आप। हेम सिंहासनपर प्रभु थाप ॥ अश्वसेन भूपति तिहिं वार। देख्यो नन्दन नयन पसार ॥ तेजपुंज निरुपम छबि देह। रोमांचित तन बढ़यो सनेह ॥ माया नींद शचो तब हरी। जिनजननी जागी सुखभरी ॥ भूषण भूषित काँति विशाल। भर लोचन निरख्यो जिनबाल ॥ अति प्रमोद उर उमग्यौ तबै। पूरन भये मनोरथ सबै ॥ तब सुरेश रोमाँचित काय। मात पिता पूजे मन लाय ॥ भूषन वसन भेंट बहु धरी। हाथ जोर जुग थुति विस्तरी। १००। तुम जगमें उदयाचल भूप। पूरव दिशि देवी शुचिरूप ॥ उदय भये त्रिभुवनरवि जहाँ। तुम महिमा बरनन बुधि कहां ॥ धनि धनि अश्वसेन भूपाल। जिनके जगगुरु जनम्यो बाल ॥ कीरतबेल अधिक तुम बढ़ी। तीनलोक मंडप शिर चढ़ी ॥ धनि वामादेवी जगमाय। जिन जायो नन्दन जगराय ॥ तीनलोक तियसृष्टिसिंगार। धनि जननी तेरो अवतार ॥ तुम सम जगमें और न आन। जिनदेवल सम पूज्य प्रधान ॥ यों थुतिकरि हरि हिये प्रमोद। बाल दिवाकर दीनों गोद ॥ कही सकल पूरवली कथा, मेरु महोच्छव कीनो जथा। तब निज नगर विषैं भूपाल, जन्म उछाह कियो तिहिंकाल ॥ हरषत सब पुरजन परिवार। घर घर भये मंगलाचार ॥ घर घर कामिनि गावैं गीत। घर घर होंय निरत संगीत ॥ मंगलीक बाजे बहु भेव। बाजन लगे सकल सुखदेव ॥ श्री जिनभवन न्हौन विस्तार। किये सकल मंगल आचार ॥ छिरक्यो चंदन नगर मंझार ॥ रतन साथिया धरे संवार ॥ जाचक दान सुजन सनमान। जथा जोग सब रीति विधान ॥ इहिविधि अश्वसेन नरनाय। कीनो

पुत्र जन्म उच्छाह ॥ पूरन आश भये सब लोय । दुखी दीन दीखै नहिं कोय ॥ दोहा—उदय भयो जिन चन्द्रमा, कुलनभि तिलक महंत ॥ सुख समुद्र बेला तजी, बढ्यो लोक परजंत । ११० । तब बहु देवनसंग विशेष । आनन्द नाटक ठयो सुरेश ॥ करैं गान गंधर्व समाज । समयजोग सब बाजैसाज ॥ देखैं अश्वसेन नरनाथ । पुत्र सहित सब परिजन साथ ॥ प्रथमरूप नव भव दरशाय । पहुपाँजुलि खेपी सुरराय ॥ तांडव नाम निरत आरम्भ । कियो जगतजान करन अचंभ ॥ नट सरूप धाख्यो अमरेश, रंग भूमि कीनो परवेश ॥ मंगलीक सिंगार संवार । सब सँगीत वेद अनुसार ॥ ताल मान विधि सहित सुभाय । रंग धरापर फैरै पाय ॥ करैं कुसुम वरषा नभ देव । देखि इन्द्रकी भक्ति सुभेव ॥ बीना मुरज बाँसली ताल, बाजे गेह गीतकी चाल ॥ करैं किन्नरी मंगल पाठ । वरियांजोग बन्यो सब ठाठ ॥ नाचैं इन्द्र भमैं बहु भाय । मोरैं हाथ कंठ कटि पाय ॥ अद्भुत तांडवरस तिहिंवार, दरसावै जनअचरजाकार । सहस भुजाहरिकीनो तबै भूषनभूषित सोहैं सबै ॥ धारत चरन चपल अति चलैं, पहुमी कांपै गिरिवर हलैं भमैं मुकुट चकफेरी लेत, ताकी रतनप्रभा छबि देत ॥ बलहाकृति ह्वै झलकै सोय, चक्राकार अगनि जिमि होय । छिनमें एक छिनक बहुरूप, छिन सूच्छम छिन थूलसरूप ॥ छिनमें निकट दिखाई देय, छिनमें दूर देह धर लेय । छिन आकाशमाहिं संचरै, छिनमें निरत भूमिपर करै ॥ १२० ॥ छिन छूवै तारावलि जाय, छिनक चन्दसों परसै काय । इन्द्रजालवत यों अमरेश, दरसाई निज रिद्धि-विशेष ॥ हाथ अंगुलिनपै अपछरा, नाचैं रूप रतनकी धरा । अंग अंग भूषन झलकाहिं, विकसत लोचन मुखमुसकाहिं ॥ निरत भेदविधि धारै पांव, करै कटाच्छ दिखावै भाव । बहुविधि कला प्रकाशै सार । सुरकामिनि दामिनिउनहार, तिनसंजुत हरि सुरतरु एम, कल्पलता गन बेढ्यो जेम । यों नाटकविधि ठान-अनूप तिहुंजग शक्र किये सुखरूप ॥ स्वामिजनम अतिशय परताप, जिनवर पिता सभापति आप । इन्द्र महानट नाचै जहां, तिस अवसर वरनन बुधि कहां । तब तहां मातपिताकी साख, पारस नाम सकल सुरभाख । राखि सुरासुर सेवा जोग, चले देव सब साधि नियोग ॥ दोहा—इहिविधि इन्द्रादिक अमर, जन्म-कल्यानकठान । बहुविधि पुन्य उपायकै, पहुंचे निज निज थान ॥ हरगीतिका—

इन्द्रादि जन्मस्नान जिनको, करन कनकाचल चढ़े। गंधर्व देवन सुयश गायो, अपछरा मंगल पढ़े॥ इहिविधि सुरासुर निज नियोगै, सकल सेवाविधि ठई। ते पासप्रभु मुझ आस पुरवो, शरन सेवकने लई॥

इति श्री पार्श्वपुराण भाषायां गर्भावतारवर्णनं नाम पञ्चमोऽधिकारः।

## अथ सप्तमोऽधिकारः।

दोहा—पारस प्रभु तजि औरको, जे नर पूजनजाहिं। कलपवृच्छको छांड़िकै बैठैं थूहर छाहिं॥ चौपाई—अब जिन बालचन्द्रमा बढ़ै। कोमल हांस किरनमुख कढ़ै॥ छिन छिन तात मात मन हरै। सुखसमुद्र दिन दिन विस्तरै॥ अग्रत इन्द्र अंगूठे देय। वही पोष पयपान न लेय॥ देवी धाय हरष मन धरै। मज्जन-मंडन विधि सब करै॥ केई मनिभूषन पहराय। करैं अलंकृत प्रभुकी काय॥ केई कामिनि करैं सिंगार। श्रीमुखचन्द्र निहार निहार॥ केई रहसवती तिय आय। हस्त कमलसों लेंय उठाय॥ मनिमय आंगनमांझ अनूप। विचरैं जिन-पति बालसरूप॥ बहुविधि देवकुमार मनोग। बालकरूप भये वययोग॥ घुटियां गमन करैं तिनसाथ। ज्यों नक्षत्रगनमें निशि नाथ॥ कबहीं सैनासन सोवन्त। ऊपर दिढ़ जिन यों जोवन्त॥ अजौं मुक्ति मो केतक परैं। मानो यह शंका मन धरैं॥ कबहीं पुहुमीपै जिनराय। कंपित चरन ठवैं इहि भाय॥ सहै कि ना धरती मुझभार। शंकै उर उपमा यह धार॥ कबहीं स्वामि उझकि उठि चलैं। विकसत मुख सब दुखको दलैं॥ बांधें मुठी अटपटे पाँय। कैसे वह छबि वरनी जाय॥ कबहीं रतन भीतमें रूप। झलकै ताहि गहैं जगभूप॥ जिनसों जिन न मिलैं सर्वथा। करत किधौं कहवत यह वृथा॥ १०॥ कबहीं रतनरेत कर लेत। करैं केलि सुरकुमरसमेत। कबहिं माय बिन रुदन करेय। देखैं फेर विहँस हँस देय॥ कबहीं छोड़ि शचीकी गोद। जननी अंक जायँ मनमोद॥ मातासों मानैं अति प्रीति। बाल अवस्थाकी यह रीति॥ यों जिन बालकलीला करै। त्रिभुवनजनमनमानिक हरै॥ क्रमसों बालभावतो नाम। श्रीमुखकमल लसी अभिराम॥ अनुक्रम भई अंगबढ़वार। तब त्रिभुवनपति भये कुमार॥ निरुपम-कांतिकला विज्ञान। लावनरूपअतुलगुहैंथान॥ मति श्रुति अवधि ज्ञानबल देव। जानैं सकल चराचर भेव॥ सोमसुभाव सहज उपशांत। निर्मल छायकदर्शन-

वँत ॥ इहिविधि आठवर्षके भये। तब प्रभु आप अनुव्रत लये ॥ देवकुमार रहैं सँग नित्त। ते छिन छिन रंजैं जिन चित्त ॥ कबहौं गज तुरंग तनधरैं। तिनपै चढ़ि प्रभु जनमन हरैं ॥ कबहीं हंस मोर बन जाहिं। तिनसों जगपति केलि कराहिं ॥ कबहीं जलक्रीड़ा थल गमैं। कबहीं वनविहारभू रमैं ॥ कबहीं करैं किन्नरीगान। सो प्रभु सुयश सुनै निज कान ॥ कबहीं निरत ठवैं सुन नार। देखैं जिनलोचन सुखकार ॥ कबहीं काव्यकथारस ठान। करैं गोठ जिन बुधि बलवान ॥ बिना सिखाये बिन अभ्यास। सब विद्या सब कलानिवास ॥ यों सुखअनुभव करत महान। भये पास जिन जोवनवान ॥ २० ॥ दोहा—संपूरन जोवन समय, प्रभुतन सोहै एम ॥ सहज मनोहर चांदकी, शरद समय छबि जेम ॥ चौपाई—प्रभुके अङ्ग पसेव न होय। सहज सदा मलवरजित सोय। उज्जलवरन रुधिर जिमि खीर, सुसमचतुर संठान शरीर ॥ प्रथम सारसंहनन सरूप, इन्द्र चन्द्र मनहरन अनूप। विनाहेत तन सहज सुवास, प्रियहितवचन मधुर मुख जास ॥ अतुलदेह बल धरत महान, सहस अठोतर लच्छनवान। तिनके नाम लिखों कछु जोय, पढ़त सुनत सुख संपति होय ॥ हरिगीत—श्रीवृक्ष शंख सरोज स्वस्तिक, शंक चक्र सरोवरो। चामर सिंहासन छत्र तोरन, तुरगपति नारी नरो। सायर दिवायर कल्पबेली, कामधेनु धुजा करी। वरवज्रवान कमान कमला, कलश कच्छप केहरी ॥ गंगा गजपति गरूड़ गोपुर, बेणु बीणा बीजना। जुगमीन महल मृदंगमाला, रतन दीप दिपै घना ॥ नागेन्द्र भुवन विमान अँकुश विरछ सिद्धारथ सही। भूषण पटम्बर हट्ट हाटक, चन्द्रचूड़ामणि कही ॥ जम्बू तरोवर नगर सूवस, बाग जनमनभावना। नौनिधि नछत्र सुमेरु सारद, साल खेत सुहावना ॥ ग्रह मंगलाष्टक प्रातिहारज, प्रमुख और विराजहीं। परमितअठोतर सहस प्रभुके, अङ्ग लच्छन छाजहीं ॥ अंतर अनंती अतुल महिमा, कथन दूर रहो कहीं। बहिरंग गुनथुति करन जगमें, शक्रसे समरथ नहीं ॥ अब और जनकी कौन गिनती दीन पार न पावना। परपार्श्वप्रभुकी सुयशमाला, पहिरि दास कहावना ॥ दोहा—सहस अठोतर लछन ये, शोभित जिनवर देह। किधौं कल्पतरूराजके, कुसुम विराजत येह ॥ चौपाई—शुभ परमानूमय जिन अङ्ग, नीलबरन नौ हाथ उतंग। छबि वरनत नहिं पावैं

ओर, त्रिभुवनजनमनमानिक चोर ॥ ३० ॥ शतसंवत्सर आव प्रमान, अतुल असाधारन गुनथान। शत्रुमित्रऊपर समभाव, दयासरोवर सोम सुभाव ॥ सागरसों प्रभु अति गंभीर, मेरुशिखरसों अधिकै धीर। कांति देखि लाजै मिरगांक, तेज विलोकि छिपै रवि रांक॥ कल्पविरछसों अधिक उदार। तिहुंजग आशा पूरनहार। यों जिनगुनको उपमा कहीं, तीनकाल त्रिभुवनमें नहीं॥ दोहा—यों सुख निवसत पास जिन, सेवत कमला पाय। सोलह वरष प्रमान प्रभु, भये जगत सुखदाय॥ सभासिंहासन एक दिन, बैठे सहज जिनेन्द्र। सुरनरमें प्रभु यों दिपैं, ज्यों उड़गनमें चन्द्र॥ अश्वसेन भूपाल तब, बोले अवसर पाय। नेह सलिल भीजे वचन, सुनो कुमर जगराय॥ एक राजकन्या बरो, करो उचित व्यवहार। वंशवेल आगे चलै, सुख पावै परिवार॥ नाभिराजकी आश ज्यों, भरी प्रथम अवतार। तथा हमारी कामना, पूरन करो कुमार॥ पितावचन सुनि प्रभु दियो, प्रतिउत्तर तिहिंवार। रिषभदेव सम मैं नहीं, देखो हिये विचार॥ मेरी सब सौ वर्ष थिति, सोलह भये वितीत। तीस वर्ष संजम समय, फिर मत कहो पुनीत॥ ४०॥ अल्पकालथिति अल्पसुख, अल्प प्रयोजनकाज। कौन उपद्रव संग्रहै, समुझि देख नरराज॥ सुन नरेन्द्र लोचन भरे, रहे वदन विलखाय। पुत्रव्याहवर्जन वचन, किसे नहीं दुखदाय॥ चौपाई—इहिविधि मंदराग जिनराय, निवसैं सबजीवनसुखदाय। पूरवकथित कमठचर सीह, पाप करत मानी नहिं चीह॥ मुनिहत्यावश दुर्गति गयो, पंचमनरकबास सो लयो। सत्रहजलधि तहां दुख सहैं, वचन द्वार जो जाहिं न कहे॥ थिति पूरन कर छोड़ी ठौर, सागर तीन भमों फिर और। पशुगतिमाहिं विपत बहु भरी, त्रसथावरकी काया धरी॥ इहिविधि भयो पाप अवसान काहू जन्मक्रिया शुभठान॥ महीपालपुर सोहै जहाँ, महीपालनृप उपज्यो तहां॥ पारसप्रभुकी वामा माय, इनको पिता भयो यह राय॥ पटरानीके प्रानवियोग, उपज्यो विरह बढ़्यो चित सोग॥ तपसी भेष धरो दुखमान, पंचागनि साधैं वनथान। सीस-जटा मृगछाला संग, भसम पीस लाई सब अंग॥ भ्रमत बनारसिके उद्यान, आयो कष्ट करत विनज्ञान। इहि अवसर श्रीपार्श्वकुमार, गये सहज वन करन विहार॥ राजपुत्र बहु सुरगन साथ, गज आरूढ़ दिपैं जिननाथ। कर सुछंद वन

केलि अनूप, चले नगरको आनँदरूप ॥ ५० ॥ देख्यो मगमें जननी तात, तपै पंचपावक तप गात। सो समीप प्रभु को अविलोय, चिंतै चित रोषातुर होय। मैं तपसी कुलवंत महंत, जननी पिता पूज सब भंत। अहो कुमरके यह अभिमान, विनय प्रनाम करैं नहिं आन ॥ इतने ईधन कारन जान, लकड़ी चीरन लग्यो अयान। हाथ कुल्हाड़ी लीनी जबै, हितमितवचन चये प्रभु तबै ॥ भो तपसी यह काठ न चीर, यामें जुगल नाग हैं बीर। सुनि कठोर बोल्यो रिस आन, भो बालक तुम ऐसो ज्ञान ॥ हरिहर ब्रह्मा तुम ही भये, सकलचराचर-ज्ञाता ठये। मनै करत उद्धत अविचार, चीरो काठ न लाई बार ॥ ततखिन खंड भये जुग जीव, जैनी विन सब अदय अतीव। दयासरोवर जिन तब कहै, तपसी वृथा गरब तू बहैं ॥ ज्ञान विना नित काया कसै, करुणा तेरे उर नहिं बसै। तब शठ रोषवचन फिर चयो, जननी जनकर तपसी भयो ॥ करै न मदवश विनय विधान, और उलट खंडै मुझ आन। पंच अगनि साधू तन दाह, रहूं एकपद ऊरध बाँह ॥ भूख प्यास बाधा सब सहूं, सूखे पत्र पारनै गँहू। ज्ञान हीन तप क्यों उच्चरै, क्यों कुमार मुझ निन्दा करै ॥ तब प्रभुवचन कहै हितकार, तुझ तपमें हिंसाअघभार। छहों कायके जीव अनेक, नाश होंहिं नित नाहिं विवेक ॥ ६० ॥ जहां जीववध होय लगार, तहां पाप उपजै निरधार। पाप सही दुर्गति दुख देह, यातैं दयाहीन तप देय ॥ ज्ञान विना सब कायकलेश उत्तम फलदायक नहिं लेश। जैसे तुम कंडन कनछार, यों अजान तप अफल असार ॥ अंधपुरुष वनदौमें दहै, दौर मरै मारग नहिं लहैं। त्यों अजान उद्यम करि पचै, भवदावानलसों नहिं बचै ॥ ऐसे ही किरिया विन ज्ञान, सो भी फल दायक नहिं जान। तथा पंगु लोचनबल धरै, उद्यम विन दावानल जरै ॥ तातैं ज्ञानसहित आचार, निहचै वांछितफलदातार। इहिविधि जिनमतके अनुसार, करि उत्तम तप यह हठ छार। मैं तुझ वचन कहे हितकार, तू अपने उर देखि विचार। भलो लगै सोई करि मित्त, वृथा मलीन करै मति चित्त ॥ दोहा—नाग जुगल सुनि जिनवचन, क्रूरजीव अति निंद। देह त्यागि ततखिन भये, पदमावती धनिंद ॥ नाग जुगलके भागकी, महिमा कही न जाय। जिनदर्शन प्रापति भई, मरन समय सुखदाय ॥ चौपाई—घर आये श्री पार्श्वजिनंद, सुरनरनेत्रकमलनी

सरस्वती भवन

चन्द्र । समयपाय तपसी तजि देह, भयो जोतिषो संवर तेह ॥ देखो जगमें तपपरभाव, ज्ञान विना बांधी सुरआव । जे नर करैं जैनतप सार, तिन्हैं कहा दुर्लभ संसार ॥ ७० ॥ स्वामी मगन सुखोदधिमाहिं, हर्ष विनोद करत दिन जाहिं, प्रभुके इष्ट वियोग न होय, सोगसँजोग न कबहीं कोय ॥ वायपित्तकफ-जनित विकार, सुपनै होय न सोच विचार । जरा न व्यापै तेज न जाय, ना मुखकमल कभी कुम्हलाय ॥ होहि नहीं दुखकारन आन, पुन्यउदधिबेला भगवान यों सुखभोग करत दिन गये, तब जिन तीसवर्षके भये॥ नृप जयसेन अयोध्या धनी, भक्ति प्रीत प्रभुसों अति घनी । तुरगादिक बहु वस्तु अनूप, पठई विनय वचन कहि भूप ॥ राजदूत चलि आयो तहां, सभा थान जिन बैठे जहां । हेमासनपर सोहैं एम, हिमगिरि शिखर श्यामघन जेम ॥ देखि दूत रोमांचित भयो, बहुविधि चरन कमलको नयो । मान्यो सफलजन्म निज सार, त्रिभुवनपति परतच्छ निहार ॥ धरी भैट जो राजा दई, विनय प्रनाम वीनती चई । तब पूँछै तहां त्रिभुवनधनी, संपति नगर अजोध्यातनी ॥ कहै दूत कर जुग सिर धार, वरनै तीर्थंकर अवतार । मोख गये वरने तिहिंठाम, सुनि स्वामी चिंतै उर ताम ॥ बेलीचाल--सुनि दूत वचन बैरागे, निज मन प्रभु सोचन लागे । मैं इन्द्रासन सुख कीने, लोकोत्तम भोग नवीने ॥ तब तृपति भई तहां नाहीं, क्या होय मनुष पदमाहीं । जो सागरके जलसेती, न बुझी तिसना तिस एती ॥ ८० ॥ सो डाभअनीके पानी, पीवत अब कैसे जानी । ईंधनसों आगि न धापै, नदियों नहिं समुद समापै ॥ यों भोगविषै अतिभारी, तृपतै न कभी तनधारी । जो अधिक उदय यह आवै, तौ अधिकी चाह बढ़ावै ॥ जो इनसों तृपति विचारै, सो वैसादर घृत डारै । इन सेवत जो सुख पावै, सो आकौं आंब उम्हावै ॥ ये भीम भुजंग सरीखे, भ्रम भाव उदय शुभ दीखे । चाखतहीके मुख मीठे, परिपाक समय कटु दीठे ॥ ज्यों खाय धतूरा कोई, देखै सब कंचन सोई । धिक ये इन्द्री सुख ऐसे, विषवेल लगे फल जैसे ॥ इनही वश जीव अनादी, भव भाँवर भ्रमत सवादी । इनही वश सीख न मानै, नाना विधि पातक ठानै॥ थिर जंगम जीव सँघारै, इनके वश झूठ उचारै । पर चोरीसों चित लावै परतिय सँग शील गमावै ॥ परिग्रह तिस्ना

विस्तारै, आरंभ उपाधि विचारै। इत्यादि अनर्थ अलेखै, करि घोरनरक दुख देखै ॥ ये ही सुखपर्वतकेरे, जग फोरन वज्र बड़ेरे। ये ही सबदोषभँडारे, धन धर्म चुरावनहारे ॥ मोही जन मोहैं योंहीं, ये आदर जोग न क्यों हीं। इनसों ममता तज दीजै, पर त्यागत ढील न कीजै ॥ ९० ॥ सामान पुरुष जग जैसे हम खोये ये दिन ऐसे। संयम बिन काल गमायो, कछु लेखेमें नहिं लायो ॥ ममतावश तप नहिं लीनो, यह कारजजोग न कीनो। अब खाली ढील न कीजै, चारित चिंतामणि लीजै ॥ दोहा—भोगविमुख जिनराज इमि, सुधि कीनी शिव थान। भावैं बारहभावना, उदासीन हितदान ॥ चौपाई—द्रव्य सुभाव विना जगमाहिं, पर ये रूप कछू थिरनाहिं। तनधन आदिक दीखेजेह, कालअगनि सब इंधन तेह ॥ भववनभ्रमतनिरंतरजीव, याहि न कोई शरन सदीव। व्योहारै परमेठी जाप, निहचै शरन आपको आप ॥ सूर कहावै जो सिर देय, खेत तजै सो अपयश लेय। इस अनुसार जगतकी रीत, सब असार सब ही विपरीत ॥ तीनकाल इस त्रिभुवनमाहिं, जीव संघाती कोई नाहिं। एकाकी सुख दुख सब सहैं, पाप पुन्य करनीफल लहैं ॥ जितने जग संजोगी भाव, ते सब जियसों भिन्न सुभाव। नितसंगी तन ही पर सोय, पुत्र सुजन पर क्यों नहि होय ॥ अशुचिअस्थि पिंजर तन येह, चाम वसन बेढ़ो घिनगेह। चेतनचिरा तहां नित रहै, सो विन ज्ञान गिलानि न गहै ॥ मिथ्या अविरत जोग कषाय, ये आस्रवकारन समुदाय। आस्रव कर्मबंधको हेत। बंध चतुरगतिके दुख देत, ॥ १०० ॥ समिति गुप्ति अनुपेहा धर्म, सहन परीषह संजम पर्म। ये संवरकारन निर्दोष, संवर करै जीवको मोष ॥ तपबल पूर्वकर्म खिर जाहिं, नये ज्ञानबल आवैं नाहिं। यही निर्जरा सुखदातार, भवकारन तारन निरधार ॥ स्वयंसिद्ध त्रिभुवनथित जान, कटि कर धरैं पुरुषसंठान। भ्रमत अनादि आतमा जहां, समकित विन शिव होय न तहां ॥ दुर्लभ धर्म दशांग पवित्त, सुखदायक सहगामी नित्त। दुर्गति परत यही कर गहै, देय सुरग शिवथानक यहै ॥ सुलभ जीवको सब सुख सदा। नौग्रीवक ताँई संपदा ॥ बोधरतन दुर्लभ संसार। भवदरिद्रदुखमेटनहार ॥ ये दशदोय भावना भाय। दिढ़ बैरागि भये जिनराय देहभोग संसार सरूप। सब असार जानो जगभूप ॥ इतनैं लोकांतिक सुर आय

पुहपांजलि दे पूजे पाय ॥ ब्रह्मलोकवासी गुनधाम । देव रिषीश्वर जिनको नाम ॥ सब पूरवपाठी बुधवंत । सहज सोममूरति उपशंत ॥ वनितारागं हिये नहिं बहैं एकजन्म धरि शिवपद लहैं ॥ तीर्थंकर जब विरकत होय । हर्षवंत तब आवैं सोय ॥ और कल्यानक करें प्रनाम । सदा सुखी निवसैं निज धाम ॥ हाथ जोर बोले गुनकूप । थुतिबायक अरु शिक्षारूप ॥ धनि विवेक यह धन्य सयान । धनि यह औसर दयानिधान ॥ ११० ॥ जान्यो प्रभु संसार असार । अथिर अपावन देह निहार ॥ इन्द्रिय सुख सुपने सम दीस । सो याही विधि हैं जगईस ॥ उदासीन असि तुम कर धरी । आज मोहसेना थरहरी ॥ बढ़यो आज शिवरमनि सुहाग । आज जगे भविजन सिरभाग ॥ जग प्रमादनिद्रावश होय । सोवत है सुधि नाहीं कोय ॥ प्रभु धुनिकिरन पयासै जबै । होय सचेत जगैं जन तबै ॥ यह भव दुस्तर पारावार । दुख जलपूरित वार न पार ॥ प्रभु उपदेश पोत चढ़ि धीर । अब सुखसों जैहैं जन तीर ॥ शिवपुरि पौर भरमपट जहां । मोह मुहर दिढ़ कीनी तहां ॥ तुम वानी कूंची कर धार । अब भवि जीव लहैं पयसार ॥ स्वयंबुद्ध बोधन समरत्थ । तुमपर प्रति बुध वचन अकत्थ ॥ ज्यों सूरज आगे जिनराज । दीप दिखावन है वे काज ॥ हम नियोग औसर यह भाय । तातैं करैं वीनती आय ॥ धरिये देव महाव्रत भार । करिये कर्मशत्रुसंघार ॥ हरिये भरमतिमिर सर्वथा । सूझै सुरगमुक्तिपथ जथा ॥ यों थुति करि बहुभाव दिढ़ाय । बारबार चरनन शिर नाय ॥ साधि नियोग गये निजथान । लोकांतिक सुर बड़े सयान ॥ अब चौविधि इन्द्रादिक देव । चढ़ि निज निज बाहन बहुभेव ॥ हर्षित उर परिवार समेत । आये तृतिय कल्यानक हेत ॥ सुर वनिता नाचैं रस भरीं । गावैं मधुरगीत किन्नरीं ॥ १२० ॥ बाजे विविधि बजैं तिस बार, करैं अमरगन जय जय कार । सोवन कलश भरे सुरराय, बिमल छीरसागर जल लाय ॥ हेमासन थापे जिनराय, उच्छवसहित न्हौन विधि ठाय । भूषन वसन सकल पहिराय, चंदनअर्चित कीनी काय ॥ इस अवसर प्रभु सोहैं एम, मोक्षवधूवर दूलह जेम । कहि वैराग वचन जिन तबै, प्रतिबोधे परिजन जन सबै ॥ अति हठसों समझाई माय, लोचन भरे वदन विलखाय । विमला नाम पालकी साज, आनी इन्द्र चढ़े

जिनराज। पहले भूमिगोचरी राय, सात पैंड़ लीनी सुखदाय। फिर विद्याधर राजा रले, पैंड़ सात ही ते ले चले ॥ पीछैं इन्द्रादिक सुरसंघ, कांधै धरी चले पुर लंघ। ना अति निकट न दीसै दूर, नभ मारग देखैं जन भूर ॥ दोहा—जिस साहबकी पालकी, इन्द्र उठावनहार। तिस गुन महिमा कथन अब, पूरन होउ अपार ॥ चौपाई—यों सुरनर सब हरषित भये, अश्व नाम वनमें चलि गये। बडतरु तलैं शिला शुभ जहाँ, कीनों शची सांथिया तहां ॥ उतरे प्रभु अति उत्तम ठाम, शान्त भयो कोलाहल ताम। शत्रुमित्र ऊपर समभाव, तिनकंचन गिन एक सुभाव ॥ सोमभाव स्वामी उर धार, पटभूषन सब दीने डार। उदासीन उत्तरमुख भये, हाथ जोर सिद्धन प्रति नये ॥ १३० ॥ दुविधि परिग्रह तजि परमेश, पंच मुष्टि लोचे सिरकेश। शिवकामिनिकी दूती जोय, धरी दिगम्बर मुद्रा सोय ॥ दोहा—सोहै भूषन बसन बिन, जातरूप जिनदेह। इन्द्र नीलमनिको किधौं, तेजपुञ्जशुभ येह ॥ पोह प्रथम एकादशी, प्रथम पहर शुभवार। पद्मासन श्रीपार्श्व जिन, लियो महाव्रतभार ॥ और तीनसै छत्रपति, प्रभुसाहस अविलोय। राज छारि संयम धरयो, दुखदावानल तोय ॥ तब सुरेश जिनकेश शुचि, छीरसमुद पहुंचाय। कर थुति साध नियोग सब, गयो सुरग सुरराय ॥ चौपाई—अब स्वामी वनथान मनोग, तेलो थापि दियो जिन जोग। अट्ठाईस मूलगुन भाख, उत्तरगुन चौरासी लाख ॥ सब प्रभु धरे परम समचेत, अचल अंग मुख मौनसमेत। यों वन बसत उपज्यों जान, संजमबल मनपर्जयज्ञान ॥ सोरठा—लघु वयमें जगपाल, कियो निवीरज कामदल। धीरज धनुष सँभाल, तिनके पदनीरज नमूं ॥ १३८ ॥

इति श्री पार्श्वपुराण भाषायां भगवद्वैराग्यप्राप्तदीक्षाकल्याणकवर्णनं नाम सप्तमोऽधिकारः।

## अथ अष्टमोऽधिकारः।

सोरठा—जाप्रभुको जसहंस, तीनलोक पिंजरैं बसैं। सो मम पाप विधंस, करौ पासपरमेश नित ॥ चौपाई—अब जिन उठे जोग अवसान, देहहेत उद्यम उर आन। परम उदास अधोगत दीठ, सहजशांतमुद्रा मनईठ ॥ दयानीर निर्मल परवाह, गुलर-खेटपुर पहुंचे नाह। लाभ अलाभ बराबर धार, निर्धन धनको नाहिं विचार ॥ ब्रह्मदत्त भूपति बड़भाग, प्रभुको देखि बढ़यो उरराग।

उत्तम पात्र सकल गुन धाम, करि प्रनाम पड़िगाहे ताम ॥ हेमासन थाप्यो नरराय, प्रासुक जल परछाले पाय । आठभांति पूजा विस्तरी, हाथ जोर अंजुलि सिर धरी॥ मन तन वायक शुद्ध सरूप। नौदातागुन सँजुत भूप॥ शुद्ध अन्न दीनों परवीन । प्रासुक मधुर दोष दुखहीन ॥ उत्तमपात्र दानविधि करी । तीन भवन कीरति विस्तरी ॥ पंचाचरज भये नृपधाम। फिर स्वामी आये वन ठाम ॥ करैं घोर तप साधैं जोग । दर्शन करत मिटैं सब शोग ॥ अचल अंग मुख सोहै मौन । एक चित्त निजपद चिन्तौन । ज्यों समुद्रजल विगतकलोल । अथवा सुरगिरिशिखर अडोल ॥ तथा नीलमनि प्रतिमा येह । यों अकंप राजै जिनदेह* ॥ चौपाई—वैर भाव छाँड़यो वन जीव । प्रीत परस्पर करैं अतीव ॥ केहरि आदि सतावैं नाहिं। निर्विष भये भुजग वनमाहिं । १० । शील सनाह सजौ शुचिरूप । उत्तरगुन आभारन अनूप ॥ तपमय धनुष धर्यो निजपान । तीन रतन ये तीखन वान ॥ समताभाव चढ़े जगशीश । ध्यान कृपान लियो कर ईश ॥ चारितरंग महीमें धीर । कर्मशत्रु विजयी बरबीर ॥ दोहा—स्वामीकी सबपर दया । सबहीके रछपाल । जगविजयी मोदादि रिपु । तिनके प्रभु छय-काल ॥ सोरठा—देखो पौन प्रचण्ड दूब न खंडै दूबरी। मोटे बिरछ विहंड, बड़े बड़ोही बल करैं ॥ दोहा—यों दुद्धर तप करत अति । धर्मध्यान पदलीन । चार मास छद्मस्त जिन । रहे राग मलहीन ॥ चौपाई—एक दिवस दोच्छावन जहां। जोगलीन प्रभु निवसैं तहां ॥ काउसग्ग तन विगत बिरोध । ठाड़े जिन वर जोग निरोध ॥ संवर नाम जोतिषी देव । पूरवकथित कमठचर एव ॥ अटक्यो अंबर जात विमान । प्रभुपर रह्यो छत्रवत आन ॥ ततखिन अवधि-ज्ञानबल तबै । पूरव वैर संभालो सबै ॥ कोप्यो अधिक न थांभ्यो जाय । राते लोयन प्रजुलीकाय ॥ आरम्भो उपसर्ग महान । कायर देखि भजैं भयमान ॥ अंधकार छायो चहुंओर । गरज गरज वरखैं घनघोर॥२०॥ झरै नीर मुसलोपम धार । बक्र वीज झलकै भयकार ॥ बूड़े गिरि तरुवर वनजाल झंझा वायु

* उक्तं च-नोकिंचित्करकार्य मस्ति गमनप्राप्यं न किंचिद्दृशोर्दृश्यं यस्य न कर्णयोःकिमपि हि श्रोतव्यमप्यस्ति न । तेनालम्बितपाणिरुज्झितगतिर्नासाग्रदृष्टी रहः । सम्प्राप्तोऽति निराकुलो विजयते ध्यानैकतानोजिनः ।

बही विकराल ॥ जल थल भयो महोदधि एम । प्रभु निवसैं कनकाचल जेम ॥ दुष्ट विक्रियाबल अविवेक । और उपद्रव करै अनेक ॥ छप्पय—किलकिलत वेताल, काल कज्जल छवि सज्जहिं । भौं कराल विकराल, भाल मदगज जिमि गज्जहिं ॥ मुंडमाल गल धरहिं, लाल लोयन निडरहिं जन । मुख फुलिंग फुंकरहिं करहिं निर्दय धुनि हन हन ॥ इहिविधि अनेक दुर्भेष धरि, कमठजीव उपसर्ग किय । तिहुंलोकवंद जिनचन्द्रप्रति, धूलि डाल निज सीस लिय ॥ दोहा—इत्यादिक उतपात सब, वृथा भये अति घोर । जैसे मानिक दीपको, लगै न पौन झकोर ॥ प्रभु चित्त चल्यो न तन हल्यो टल्यो न धीरज ध्यान । इन अपराधी क्रोधवश, करी वृथा निज हान ॥ पावक पकरै हाथ सों, अवशि हाथ जलि जाय । परके तन लागै नहीं, वाके पुन्य सहाय ॥ प्रानी विषयकषाय वश, कौन कौन विपरीत । करत हरत कल्यान निज, जलौ जलौ यह रीत ॥ प्रभु अचिन्त्य महिमा धनी, त्रिभुवन पूजत पाय । तिनके यह क्यों संभवै, सुर उपसर्ग कराय ॥ इहिविधि जो कोई पुरुष, पूछै संशय राखि । ताके समुझावन निमित, लिखूं जिनागम साखि ॥ चौपई—अवसर्पनि उतसर्पनि काल । होंहि अनन्तानंत विशाउ ॥ भरत तथा ऐरावत माहिं । रंहट घटीवत आवैंजाहिं ॥३०॥ जब ये असंख्यात परमान, बीते जुगम खेत भू थान ॥ तब हुंडावसर्पण एक । परै करै विपरीत अनेक ॥ ताकी रीत सुनो मतिवंत । सुखमा दुखमा कालके अन्त ॥ बरखादिकको कारन पाय । विकलत्रय उपजैं बहु भाय ॥ कल्पवृक्ष विनशैं तिहिवार । वरतै कर्मभूमि व्यवहार ॥ प्रथम जिनेश प्रथम चक्रेश । ताही समय होहिं इहि देश ॥ विजय भंग चक्रीकी होय । थोड़े जीव जाहिं शिवलोय ॥ चक्रवर्ति विकलप विस्तरै ब्रह्मवंशकी उत्पत्ति करै ॥ पुरुष शला का चौथे काल । अट्ठावन उपजैं गुनमाल ॥ नवम आदि सोलह परजंत । सात तीर्थमें धर्म नशंत ॥ ग्यारह रुद्र जनम जह धरैं । नौ कलिप्रिय नारद अवतरैं ॥ सप्तम तेईसम गुनवर्ग । चरमजिनेश्वरको उपसर्ग ॥ तीजे चौथे काल संभार । पंचममें दीसै बढ़वार ॥ विविध कुदेव कुलिंगी लोग । उत्तम धर्म नाशके जोग ॥ सवर विलाल भील चंडाल । नाहलादि कुलमें विकराल ॥ कल्की उपकल्की कलिमाहिं । बयालीस हैं मिथ्या नाहिं ॥ अना-

वृष्टि अतिवृष्टि विख्यात। भूमिवृद्धि वज्राग्निनिपात ॥ ईतभीत इत्यादिक दोष। कालप्रभाव होहिं दुखपोष ॥ दोहा—यों त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें, कथन कियो बुधराज। सो भविजन अवधारियों, संशय मेटन काज ॥४०॥ गीता--तीसरे कालहं मुक्तिसाधौ, प्रथम तीर्थंकर सही। पुनि तीन तीरथ होहिं चक्री, एक हरि जिनवर वही ॥ इस भांति चौथे जुग शलाका पुरुष ऊने अवतरैं। हुंडावसर्पिनिमें अठावन जीव बासठ पद धरें ॥ चौपाई—तब फनेशआसन कंपियौ। जिन उपकार सकल सुधि कियौ ॥ ततखिन पद्मावतिले साथ। आयो जहं निवसैं जिननाथ ॥ करि प्रनाम परदछना दई। हाथ जोरि पदमावति नई ॥ फण मंडप कीनो प्रभुशीश। जलबाधा व्यापै नहिं ईश ॥ नागराज सुर देख्यो जाम। भाज्यो दुष्ट जोतिषी ताम ॥ हीनजोग सूधी यह बात। भागि जाय तबही कुशलात ॥ अब सब कोलाहल मिट गये। प्रभु सत्तमथानक थिर भये ॥ विकलपरहित चिदातमध्यान। करै कर्म छयहेत महान ॥ सात प्रकृति चौथे गुणठान। पहले नाश करी भगवान ॥ अब ह्यां धर्मध्यानबल धीर। तीन प्रकृति जीती वरबीर ॥ प्रथम शुकल पदसों परनये। खिपकसेनिमारगपर ठये ॥ प्रकृति छतीस नवैं छयकरी। दशवैं लोभ प्रकृति प्रभु हरी ॥ दोहा—एकादशम उलंघिपद, चढ़ैं बारहैं थान। कर्म प्रकृति सोलह तहाँ, नाश करी अवसान ॥चौपाई इहिविधि त्रेसठ प्रकृति निवार। घाते कर्म घातियाचार ॥ चेत अंधेरी चौदह जान, उपज्यो प्रभुके पंचम ज्ञान ॥ लोकालोक चराचर भाव, बहु विधि पर जायवंत सुभाव। ते सब आन एकही वार। झलके केवल मुकुर मंझार ॥५०॥ भये अनन्त चतुष्टयवन्त। प्रगटी महिमा अतुल अनन्त ॥ दिव्य परम औदारिक देह। कोटि भानुदुति जीती जेह ॥ अलौकीक अद्भुत सम्पदा। मंडित भये जिनेश्वर तदा ॥ वचन अगोचर महिमा सार। वरनन करत न पइये पार ॥ दोहा—पांच हजार प्रमान धनु, उपजत केवल ज्ञान। अन्तरिच्छ प्रभु तन भयो, ज्यों शशि अंबरथान* ॥ चौपाई—प्रकटी केवल रवि किरण जाम। परिफूल्यो त्रिभुवन कमल ताम ॥ आकाश अमल दीसै अनूप। दिशि विदिशि

* उक्तं च गाथा—जादे केवल णाणे परमो रालं जिणाण सव्वाणं। गच्छदि उवरे चावा पंच सहस्साणि वसुहाउ।

भई सब विमल रूप ॥ सुरलोक बजौं घंटागरिष्ट । तरु करन लगे तहां पुहुप-विष्ट ॥ इन्द्रासन कांपे अति गरीश । आनम्रभये मनि मुकुटशीश ॥ इत्यादिक बहुविधि चिहन चार । प्रभु केवल सूचक भये सार ॥ तब अवधि जोड़िजान्योसुरेश छय करे कर्म पारसजिनेश ॥ सिंहासन तजि निज सीस नाय, प्रनमो परोख सुख उर न माय । इन्द्रानी पूछै कहहु कंत, क्यों आसन तजि उतरे तुरंत ॥ किस कारन स्वामी नयो शीश, याको प्रतिउत्तर देहु ईश । तब बोले विकसत देवराज, प्रभु उपज्यो केवलज्ञान आज ॥ ऐरावतगज सजि सपरिवार, प्रथमेंद्र चल्यो आनन्द अपार । बाजे बहु पटह पयानभेर, सब वरनन करत लगै अबेर । ईशानप्रमुख सब स्वर्गनाथ, निजबाहन चढ़ि चढ़ि चले साथ । हरिनाद सुन्यो जोतिषीदेव, चंद्रादि चले तब पंच भेव ॥ ६० ॥ भावनघर बाजे संख भूरि, दशविधि सुर निकसे हरष पूरि । वसुबिंतरघर गरजे निशान, यों परियन सब कीनो पयान ॥ यों चली चतुर विधि सुरसमाज, जिन केवलपूजा करन काज । अंबर तजि आये अवनिमाहिं, जहँ समोसरन धुज फरहराहिं ॥ जो सुरपतिको उपदेश पाय, धनपतिने कीनो प्रथम आय । वर पंचवर्ण मणिमय अनूप, जग-लक्ष्मीको कुलग्रह सरूप ॥ दोहा—समोसरनकी संपदा, लोकोत्तर तिहुं भौन । वचनद्वार वरनें तिसै, सो बुध समरथ कौन ॥ सोरठा—पै थल अवसर पाय, धर्मध्यानकारन निरखि । लिखो लेश मन लाय, पढ़त सुनत आनन्द बढ़ै ॥६५॥

चौपाई—पहले गोलपीठका ठई, इन्द्रनीलमनिमय निर्मई । पांच कोस चौंड़ी परवान, तीनलोक उपमा नहिं आन ॥ जाके चहुंदिशि गिरदाकार, बनी पैंड़िका बीसहजार । हाथ हाथपरि ऊँची लसैं, नभपरजंत देखि दुख नसैं ॥ तापर धूलीशाल उतंग, पंचरतनरजमय सर्वंग । विविध वर्ण सो बलयाकार, झलकें इन्द्रधनुष उनहार ॥ कहीं श्याम कहिं कंचनरूप, कहिं विद्रुम कहिं हरित अनूप । समोसरन लछमीको एम, दिपै जड़ाऊ कुंडलजेम ॥ चारों दिशि तोरन बन रहे, कनक थंभ ऊपर लहलहे । आगे मानभूमि है जहां, मानथंभ चारोंदिशि तहां ॥ तिनकी प्रथम पीठका बनी, सोलह पैंड़ी संजुत ठनी । चार चार दरवाजे ठान, तीन तीन तहां कोट महान ॥ तिनमें और त्रिमेखलपीठ, तिनपै मानथंभ थिर दीठ । अतिउतंग कंचनके ठये, छत्रधुजादिकसों छवि

सरस्वती भवन

छये ॥ जिनैं देखि मानी मद बढ़े, उतरे मान महागिरि चढ़े। मूलभाग प्रतिमा मनहरैं, इन्द्रादिक पूजा विसतरैं ॥ एक एक दिशि चहुं दिशि ठई, सहज वापिका वारिजछई। मन्दादिक शुभ जिनके नाम, चारों दिशि सोलह सुख-धाम ॥ आगे खाई शोभित खरी, औंड़ो अधिक विमलजलभरी। रतनतीर राजैं चहुंओर, हंसकलाप करैं जहँ शोर ॥ दोहा—वलयाकृति खाई बनी, निर्मल जल लहरेय। किधौं विमल गंगानदी, प्रभु परदछना देय ॥ चौपाई—आगे पुहपबेल वनसार, महासुगंध मधुप सुखकार। सघनछांह सब रितुके फूल, फूले जहां सकल सुखमूल ॥ याकैं कछु अन्तर दुति धरै, कंचन कोट प्रथम मनहरै। बलयाकृति अति उन्नत जेह, मानो मानषोत्र गिरि येह ॥ चहुंदिशि सोहैं चार दुवार, रूपमई तिखने मनहार। रतनकूट ऊपर जगमगै, लाल वरन अतिसुन्दर लगै ॥ किधौं अरुन छवि हाथ उठाय, जगलछमी नाचै विहसाय। नौनिधि जहां रहैं अभिराम, पिंगलादि हैं जिनके नाम ॥ ८० ॥ प्रभुअजोग गिन दीनी छार, वे मचली सेवैं दरबार। मंगल दरव एकसौ आठ, धरे प्रतेक मनोहर ठाठ ॥ गावैं जिनगुन देवकुमार, और विविधि शोभा तहँ सार। वितरदेव खड़े दरवान, विनयहीनको देहिं न जान ॥ यह पहले गढ़की विधि कही, आगे और सुनो अब सही। गोपुर तजि चारों दिशि गली, गमनहेत भीतरको चली ॥ तहां निरतशाला दुहुं पास, सब दिशिमें जानो सुखवास। सुवरनथंभ फटिकमय भीत, तिखनी मनिमय शिखर पुनीत ॥ सुरवनिता नाचैं तहँ एम, लावन-तोय-तरंगनि जेम। मंदहास मुख सोहै खरीं, जिनमंगल गावैं सुखभरीं ॥ बाजैं बीन बांसली ताल, महा मुरजधुनि होय रसाल। आगे बीथी अन्तर धरे, दोनों दिशा धूपघट भरे ॥ सोरठा—श्यामवरन यह जानि, धूप धुवां नभको चल्यो। किधौं पुन्यडर मानि, धूवां मिस पांतग भज्यो ॥ चौपाई—आगे चार बाग चहुं ओर, प्रथम अशोक नाम चितचोर ॥ सप्तवर्ण चंपक सहकार, ये इनकी संज्ञा अविधार ॥ सब रितुके फल फूलन भरे, विरछ वेलसों सोहत खरे। वापी-मंडप महल मनोग, राजैं जहां जथाविधिजोग ॥ चैत विरछ चारों वनमाहिं, मध्यभागसुन्दर छवि छाहिं। जिनमुद्रामंडित मनहरैं, सुरनर नित पूजा विस्तरैं ॥ बाग ओट बेदी चहुंओर, चारद्वारमंडित छवि जोर। अब इस वन बेदीतैं

सही, गढ़परजन्त गली जे रही ॥ तिनमें धुजापाँति फहराहिं, कंचन-थम्भ लगी लहराहिं । दशप्रकार आकार समेत, तिनके भेद सुनो सुखहेत ॥ माला वसन मोर अरविन्द, हंस गरुड़ हरि वृगभ गयंद । चक्रसहित दश चिहन मनोग । धुजा दुकूलनि सोहैं जोग ॥ ये दश एक जातकी जान, एक एकसौ आठ प्रमान । दशसै असी सबै मिल भई, एक दिशामें सब वरनई ॥ चारों दिशिकी जोड़ सरीस, चारहजारतीनसै बीस । यह परमित जिनशासनमाहिं । अति विचित्र शोभा अधिकाहिं ॥ हालैं धुजा पवन वश येह । जिनपूजन भवि आये जेह ॥ पंथखेद तिनको मन आन । करत किधौं सतकार विधान ॥ मानथंभ धुजथम्भ अनूप, चैतविरछ वेदी गढ़ रूप । इत्यादिक ऊँचे इकसार, जिन तनतैं बारह गुन धार ॥ आगे रजातमयी निरमान, तुंगकोट अति धवल महान । किधौंसेत प्रभु सुजस प्रकास, फेरी देय फिरो चहुंपास ॥ पूरववत दरवाजे चार, रतनमई अनुपम छबि धार । नौनिधि मंगल दरब समाज, तोरन प्रमुख और सब साज ॥ प्रथम कोटवरनन सम जान, ठाड़े भवन देव दरवान । यासों लगी और सब गली, चारों तरफ एक सी चली । १०० । कल्पवृक्ष वन राजै तहां, दशविधि कल्प तरोवर जहां । भूषन वसन लगे जिन डार, शोभा कहत न लहिये पार ॥ मध्यभाग जिनबिम्ब समेत, सिद्धारथ तरुवर छवि देत । चहुंदिशि बेदी चहुंदिशि द्वार, रचना और अनेक प्रकार ॥ इस बेदीके बाहर भाग, आगे फटिक कोट लों लाग । अतिविचित्र महलनकी पांति । जिन सिर रत्नकूट बहुभांति ॥ चंद्र-कान्त मणि भासुर भीत, सुवरनमय तहां थम्भ पुनीत ॥ सुरनरनागर मैं जिन माहिं । किन्नरगन बहु केलि कराहिं ॥ वीथी मध्यदेश शुभरूप । पद्मराज मनि मय नव तूप ॥ धुजा छत्र घंटा छबि देहिं, जिन मुद्रा सों मन हर लेहिं ॥ आगे तृतीय कोट वन एम, फटिकमई निर्मल नभ जेम । अति उतंग सो बलयाकार, लालवरन मनिनिर्मित द्वार ॥ और कथन पूरववत जान, ठाड़े सुरग देव दरवान । महामनोहर लोचन हारि, अनुपम शोभा अचरज कारि ॥ अब सुनि मध्य भूमिकी कथा, फटिककोट भीतर विधि जथा ॥ गढ़सों प्रथम पीठलग लगी, फटिकभीत सोलह जगमगी ॥ तिनपै रतनथंभ छबि देहिं ।

प्रभा जालसों तम हर लेहिं। तिनही पै श्रीमंडप छयो, फटिक मई नभमें निरमयो ॥ सोरठा—या श्रीमंडप माहिं, निराबाध तिहुँ जग बसैं। भीर होय तहां नाहिं, त्रिभुवनपति अतिशय अतुल ॥११०॥ चौपाई—भीत न बीच गली जे रही। बारह सभा तहां जिन कही ॥ बैठे मुनि अपछर अजिया, जोतिष वान असुर सुरतिया ॥ भावन विंतर जोतिषि देव। कल्प निवासी नर पशु एव ॥ तिनमें प्रथम पीठका ठई। अनुपम बैडूरज मणिमई ॥ मोर कंठवत आभा जास, सोलह पैंड साल चहुँपास ॥ बारह सभा महादिशि चार। तिनको यह पथ सोलह सार ॥ मंगल दरव जहां सब धरे। जच्छदेव सेवक तहां खरे ॥ धर्मचक्र तिनके सिर दिपै। जिनको देखि दिवाकर छिपै ॥ तापर दुतिय पीठका बनी। चामीकरमय राजत घनी ॥ मेरुशृंगवत उन्नति एम। जगमगाय मंडल रवि जेम ॥ आठ धुजा आठों दिशि जहां, तिन शोभा वरनन बुध कहां ॥ तिनमें आठ चिहन चित्राम। चक्र गयंद वृषभ अभिराम ॥ वारिज वसन केहरीरूप। गरुड माल आकार अनूप ॥ मंद पवनवश हालैं जेह, किधौं पापरज झारत येह ॥ तापर तृतिय पीठिका और। तीन मेखलामंडित ठौर ॥ सर्व रतनमय झलकत खरी। किरन जास दश दिशि विस्तरी ॥ गंध कुटी तहां बनी अनूप, पंचरतनमय जड़ित सरूप। जाके चार द्वार चहुं ओर, झलकें मानिक होरा होर ॥ तीन पीठ सिर सोहत खरी, किधौं त्रिजगछवि नीची करी। परम सुगंध न वरनी जाय। सुन्दर शिखर धुजा फहराय ॥ तहां हेम सिंहासन सार। तेज सरुप तिमिर छयकार। नानारतन प्रभामय लसैं, जगलछमी प्रति किरनन हसैं ॥ वचनगम्य नहिं शोभा जहां। अन्तरीक्ष प्रभु राजैं तहां। त्रिभुवन पूजित पास जिनेश, ज्यों जगशिखर सिद्ध परमेश ॥ दोहा—समवसरन रचना अतुल, ताको अंत विरतार। सम्पति श्रीभगवानकी, कहत लहत को पार ॥ सोरठा—जिन चरनन नभमाहिं, मुनि विहंग उद्यम करैं। पै उड़ि पार न जाहिं, कौन कथा नर दीनकी ॥

अष्टप्रातिहार्यवर्णन।

गीता—राजत उतंक अशोक तरुवर, पवन प्रेरित थरहरै। प्रभु निकट पाय प्रमोद नाटक, करत मानो मनहरै॥ तिस फूल गुच्छन भ्रमर गुंजत, यही

तान सुहावनी। सो जयो पास जिनेंद्र पातक हरन जग चूड़ामनी ॥ निज मरन देखि अनंग डरप्यो, शरन ढूंढ़त जग फिरो। कोई न राखै चोर प्रभुको, आय पुनि पायन गिरो ॥ यों हार निज हथियार डारे, पुहुपवर्षा मिस भनी। सो जयो पासजिनेन्द्र पातक हरन जग चूड़ामनी ॥ प्रभु अंग नील उतंग नगतैं, वानि शुचि सोता ढली। सो भेद भ्रम गजदंत पर्वत, ज्ञानसागरमें रली। नय सप्त भंग तरंगमंडित, पाप ताप विधंसनी। सो जयो पास जिनेंद्र पातक हरन जग चूड़ामनी ॥ चाँद्रार्चि चय छवि चारु चंचल, चमरवृन्द सुहावने। ढोलैं निरन्तर जच्छनायक, कहत क्यों उपमा बने। यह नील गिरिके शिखर मानो, मेघझर लागी घनी। सो जयो पास जिनेंद्र पातक हरन जग चूड़ामनी ॥ हीरा जवाहर खचित बहुविधि, हेम आसन राजए। तहँ जगत जनमनहरन प्रभुतन, नीलवरन विराजए। यह जटित बारिज मध्य मानो नील मनिकलिका बनी। सो जयोपास जिनेंद्र पातकहरन जग चूड़ामनी ॥ जगजीत मोहमहान जोधा जगतमें पटहा दियो। सो शुक्लध्यान कृपानबल, जिन विकट बैरी वश कियो ॥ ये बजत विजय निशान दुंदभि, जीत सूचैं प्रभुतनी। सो जयो पासजिनेंद्र पातक हरन जग चूड़ामनी। १३०। छदमस्त पदमें प्रथम दर्शन, ज्ञान चारित आदरे। अब तीन तेई छत्र छलसों, करत छाया छवि भरे ॥ अति धवलरूप अनूप उन्नत, सोम बिम्ब प्रभा हनी। सो जयो पास जिनेंद्र पातक हरन जग चूड़ामनी ॥ दुति देखि जाकी चांद शरमें, तेजसों रवि लागए, अब प्रभामण्डप जोग जगमें कौन उपमा छाजए। इत्यादि अतुल विभूतमंडित, सोहिये त्रिभुवनधनी, सो जयो पासजिनेन्द्र पातकहरन जग-चूड़ामनी ॥ यों असम महिमासिंधु साहब, शक्र पार न पावही, तजि हासभय तुम दास भूधर, भगतिवश जस गावही। अब होउ भवभव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहौं। कर जोर यह बरदान मांगौं, मोखपद जावत लहौं ॥ चौपाई—इह विधि समोसरन मंडान, कियो कुवेर जथाविधि थान। आये सुर बरसावत फूल। जय जयकार करत सुखमूज ॥ अति प्रसन्नता सब विधि भई हरषत तीन प्रदछना दई। धूलशालिमें कियो प्रवेश, चक्रित भयो छवि देखि सुरेश ॥ मुदित महर्धिक देवन साथ, जिनसन मुख आयो सुरनाथ। हस्तकमल

जोरे अमरेश, देखे दृग भरि पासजिनेश ॥ मणिउतंग आसन पर ईस, मानो मेघ रत्नगिरि शीस । फैल रही तनकिरनकलाप, कोटभानसों अधिक प्रताप ॥ विकसत चित रोमांचित काय, प्रनमो चरन सीस भुवि लाय । मनिझारी भरि तीरथयोय, पूजे मघवा जिनपद दोय ॥ सुर्ग सुगंधनि भक्ति बढ़ाय, अरचे इन्द्र जिनेश्वरपाय । मुक्ताफलमय अच्छत लिये, पुंज परमगुरु आंगे दिये ॥ पारिजात मंदार मनोग, पुहुप चढ़ाये जिनवर जोग । सुधापिंड चरु लेय पवित्त, पूजा करी शक्र धरि चित्त ॥१४०॥ रतनप्रदीप रवाने खरे, श्रीपति पाँय शचीपति धरे । देवलोककी अगर अनूप, पासचरन खेई सुरभूप ॥ कल्पतरोवरके फल रजे, जगपतिपाँय पुरंदर जजे । सर्व दरव धरि करि परनाम, दीनों इन्द्र अरघ शभिराम ॥ दोहा—करि जिनपूजा आठ विधि, भावभक्ति बहुभाय, अब सुरेश परमेशथुति, करत सीस निज नाय ॥ चौपाई—प्रभु इस जग समरथ नहिं कोय, जापै जासवर्णन तुम होय । चारज्ञानधारी मुनि थके, हमसे मंद कहा कर सके ॥ यह उर जानत निश्चय कीन, जिनमहिमावर्णन हम हीन । पै तुम भक्ति करै बाचाल, तिसवश होय गहूँ गुणमाल ॥ जय तीर्थंकर त्रिभुवनधनी, जगचंद्रोपम चूड़ामनी । जय जय परमधर्मदातार, कर्मकुलाचल चूरनहार ॥ जय शिवकामिनकंत महंत, अतुल अनन्त चतुष्टयवंत । जय जग आश भरन बड़भाग, शिवलछमीके सुभग सुहाग ॥ जय जय धर्मधुजाधर धीर, सुरग-मुक्तिदाता वरवीर । जय रतनत्रय रत्नकरण्ड, जय जिन तारनतरनतरण्ड ॥ जय जय समोसरन सिंगार, जय संशय बन दहनतुसार । जय जय निर्विकार निर्दोष, जय अनन्तगुनमानिककोष ॥ जय जय ब्रह्मचरजदल साज; कामसुभट विजयी भटराज । जय जय मोह महानगकरी, जय जय मदकुञ्जर केहरी ॥ १५० ॥ क्रोधमहानलमेघ प्रचण्ड, मानमहीधरदामिनिडंड । माया-बेलधनंजयदाह, लोभसलिलशोषक दिन नाह ॥ तुमगुनसागर अगम अपार, ज्ञान जहाज न पहुंचैपार । तट ही तटपर डोलत सोय, स्वारथसिद्ध तहां ही होय ॥ प्रभु तुम कीर्तिबेल बहु बढ़ी, जातनबिना जगमंडप चढ़ी । और अदेव सुयश नित चहैं, ये अपने घरही यश लहैं ॥ जगतजीवघूमै बिन ज्ञान, कीनो मोह महा विषपान ॥ तुम सेवा विषनाशन जरी । यह मुनिजन मिलि

निहचै करी ॥ जन्मलता मिथ्यामतमूल । जामन मरन लगैं जिहि फूल ॥ सो कबही बिन भक्ति कुठार । कटैं नहीं दुखफलदातार ॥ कलप तरोवर चित्रा-बेल । काम पोरसा नौनिधि मेल ॥ चिँतामनि पारस पाषान । पुन्य पदारथ और महान ॥ ये सब एकजन्मसंयोग । किंचित सुखदातार नियोग ॥ त्रिभुवननाथ तुमारो सेव । जन्मजन्म सुखदायक देव ॥ तुम जग बान्धव तुम जगतात, अशरनशरन विरद विख्यात ॥ तुम जगजीवनके रछपाल। तुम दाता तुम परम दयाल ॥ तुम पुनीत तुम पुरुषपुरान । तुम समदर्शी तुम सब जान ॥ तुम जिन यज्ञ पुरूष परमेश । तुम ब्रह्मा तुम विष्णु महेश ॥ तुमही जगभरता जगजान । स्वामि स्वयंभू तुम अमलान ॥ तुम बिन तीनकाल तिहुंलोय । नहिं नहिं शरन जीवको कोय । १६० । तिस कारन करुणानिधि नाथ, प्रभु सनमुख जोरे हम हाथ ॥ जबलों निकट होय निरवान, जगनिवास छूटै दुखदान ॥ तब लों तुम चरनाम्बुज वास । हम उर होहु यही अरदास ॥ और न कछु वांछा भगवान । यह दयाल दीजै वरदान ॥ दोहा—इहिविधि इन्द्रादिक अमर, करि बहुभक्ति विधान ॥ निज कोठे बैठे सकल, प्रभुसम्मुख सुखमान ॥ जीति कर्मरिपु जे भये, केवल लब्धिनिवास । ते श्रीपारस प्रभु सदा करो विघनघन नास ॥

इति श्री पार्श्वपुराण भाषायां भगवत् ज्ञान कल्याणक वर्णनं नाम अष्टमोऽधिकारः

## अथ नवमोऽधिकारः ।

सोरठा—पारस प्रभुको नाउँ, सार सुधारस जगतमें । मैं याकी बलि जाउँ, अजर अमर पद मूल यह ॥ दोहा—बारह सभा सुथानमधि, यों प्रभु आनन्द हेत । यथा कमलनी खंडको, शशिमंडल सुखदेत ॥ विकसितमुख सुरनर सकल, जिन सन्मुख करजोर । निवसैं प्यासे अमृतधुनि, ज्यों चातक घनओर चौपाई-तब गनराज स्वयंभूनाम, चारज्ञानधारी गुनधाम । करि प्रनाम पारस प्रभुओर । विनती करी करांजुलि जोर ॥ भो स्वामी त्रिभुवन धर येह । मिथ्या तिमिर छयो अति जेह ॥ भूले जीव भमैं तामाहिं । हित अनहित कछु सूझै नाहिं ॥ श्रीजिनवाणी दीपक लोय, ता विन तहां उदोत न होय ॥ तातैं करुना निधि स्वयमेव, करि उपदेश अनुग्रह देव ॥ जाननजोग कहा है ईश, गहन

जोग सो करि जगदीश । त्यागनजोग कहो भगवान । तुम सबदर्शी पुरुष प्रमान ॥ कैसे जीव नरकमें परै, क्यों पशुयोनि पाय दुख भरै ॥ काहे सों उपजै सुरलोय, कौन कर्मतैं मानुष होय ॥ कौन पापफल जनमें अन्ध । बहरे कौन क्रिया सम्बन्ध ॥ किस अघ उदय होय नरपंग । गूंगे किस पातक परसंग ॥ कौन पुन्यतैं दरव अतीव । क्यों यह होंहिं दरिद्री जीव ॥ पुरुष वेद किस धर्म उदोत, नारि नपुंसक किस विधि होत । १० । किस आचरन बड़ी थिति धरैं । क्यों करि अलप आयु धरि मरैं ॥ भोग हीन अरु भोग समेत । सुखी दुखी दीसैं किस हेत ॥ किस कारन मूरख मतिहीन । क्यों उपजै पंडित परवीन ॥ किस करनीतैं हाय सरोग । किस अधर्मतैं पुत्र वियोग ॥ विकल शरीर पाय दुख सहै । नीच ऊँचकुल कैसे लहै ॥ किन भावन भवथिति विस्तरै, भवथिति भेद कहा करि करै ॥ क्योंकर होय सुरभमें इन्द्र । कैसे पद पावै अहमिन्द्र ॥ चक्रीपद किस पुन्य उदोत, किमि बांधै तीर्थंकर गोत ॥ इत्यादिक यह प्रश्न समाज । इनको उत्तर कह जिनराज ॥ तुम सब संशय हरन जिनेश । जैसे भव तमदलन दिनेश ॥ दोहा—तब श्रीमुखवानी विमल, बिन अक्षर गंभीर । महामेघकी गरज सम, खिरी हरन जगपीर ॥ तालु होठ सपरस बिना मुखविकार बिन सोय । सब भाषामय मधुरतर, श्रीजिनकी धुनि होय ॥ जथा मेघजल परनमें निम्बादिक रस रूप ॥ तथा सर्व भाषा मई, श्री जिनवचन अनूप ॥ चौपई—छहों दरव पंचासतिकाय, सात तत्व नौपद समुदाय ॥ जाननजोग जगतमें येह । जिनसों जाहिं सकल सन्देह ॥ सब विधि उत्तम मोख निवास । आवागमन मिटै जिहिँ बास ॥ तातैं जे शिवकारन भाव । तेई गहन जोग मन लाव ॥ २० ॥ यह जगवास महादुख रूप । तातैं भ्रमत दुखी चिद्रूप ॥ जिनभावन उपजै संसार । ते सब त्याग जोग निरधार ॥ नरकादिक जग दुख जावंत, पापकर्म वशतें बहुभंत ॥ सुरगादिक सुखसम्पति जेह । पुन्य तरोवरको फल तेह ॥

दोहा—इहि विधि प्रश्नसमाजको, यह उत्तर सामान । अब विशेष इनको लिखौं जथाशक्ति कछु जान ॥ जीव अजीव विशेष बिन, मूल दरव ये दोय । इनहीको फैलाव सब, तीनकाल तिहुं लोय ॥ चेतन जीव अजीव जड़, यह

सामान्य सरूप। अनेकांत जिनमतविषैं, कहे जथारथरूप ॥ दरव अनेक नयातमक, एक एक नय साधि। भयो विविध मतभेद यों, जगमें बड़ी उपाधि ॥ जन्मअन्ध गजरूप ज्यों, नहिं जानै सरवंग। त्यों जगमें एकांत मत, गहै एक ही अंग ॥ ता विरोधके हरनको, स्यादवाद जिनवैन। सब संशयमेटन विमल, सत्यारथ सुखदैन ॥ सात भंगसों साधिये, दरवजात जामाहि। सधै वस्तु निरविघन तब, सब दूषन मिटजाहिं ॥ घनाक्षरी- अपने चतुष्टैकी अपेच्छा दर्व अस्तिरूप, परकी अपेच्छा वही नासतिबखानियै। एकही समै सो अस्ति नासति सुभाव भरै, ज्यों है त्यों न कहां जाय अवक्तव्य मासियै। अस्ति कहे नासति अभाव अस्ति अवक्तव्य, त्योंही नास्ति कहें नास्ति अवक्तव्य जानिये। एकै बार अस्ति नास्ति कह्यो जाय कैसे तातैं, अस्ति नास्ति अवक्तव्य ऐसै परवानियै ॥३०॥ दोहा—इहि विधि ये एकांतसों, सात भंग भ्रमखेत। स्यादवादपौरुष धरैं, सब भ्रमनाशन हेत ॥ स्यादशब्दको अर्थ जिन, कह्यो कंथचित जान। नागरूप नय विषहरन, यह जग मंत्र महान ॥ ज्यों रसविद्ध कुधातु जग, कंचन होय अनूप स्यादवाद संजोगतैं, सब नय सत्यसरूप ॥

जीवविषैं सातोंभंगनिरूपण।

चौपाई—दरवदिष्टि जिय नित्तसरूप, परजयन्याय अथिर चिद्रूप। नित्यानित्य कथंचित होय, कह्यो न जाय कथंचित सोय ॥ नित्य अवाचि कथंचित वही, अथिर अवाचि कथंचित सही। नित्यानित्यअवाचक जान, कहत कथंचित सब परवान ॥ इहिंविधि स्यादवाद नयछाहिं, साधो जीव जैनमतमाहिं। और भांति विकलप जे करें, तिनके मत दूषन विसतरैं ॥ जीवनिरूपण—जीव नाम उपयोगी जान, करता भुगता देहप्रमान। जगतरूप शिवरूप अनूप, ऊरधगमन सुभावसरूप ॥ सोरठा—ये सब नौ अधिकार, जीवसिद्धकारन कहे। इनको कछु विस्तार, लिखों जिनागम देखिके ॥ चौपाई—चार भेद व्यौहारी प्रान, निहचै एक चेतना जान। जो इनसां नित जीवित रहै, सोई जीव जैनमत कहै। सोरठा—प्रथम आव अवधार, इन्द्री सांस उसांस बल ॥ मूल प्रान ये चार, इनके उतरभेद दश ॥ ४० ॥ दोहा–पांच प्रान इन्द्रीजनित, तीनभेद बलप्रान एक सांस उस्वास गनि, आवसहित दश जान ॥ चौपाई—सैनी जीव जगतमें

जेह, दशों प्रानसों जीवै तेह। मनसों रहित असैनी जात, ते नौप्रान धरैं दिन रात ॥ कान बिना चौइन्द्री जिते, आठ प्रानके धारक तिते। तेइन्द्रीके आँख न भनी, तातैं सात प्रानके धनी ॥ नासा विन बेइन्द्री जीव, तिन सबके षट-प्रान सदीव। जीभ वचनवर्जित तन तास, एकेन्द्री चहुं प्राननिवास ॥ दोहा—इहिविधि जीव अजीव सब, तीनकाल जगथान। सत्तासुख अवबोध चित, मुक्तजीवके प्रान ॥ चौपाई—दोप्रकार उपयोग बखान। दर्शन चार आठ विधि ज्ञान ॥ चक्षु अचक्षु अवधि अवधार। केवल ये सब दर्शन चार॥ अब सुन वसुविधि ज्ञान विधान। मति श्रुति अवधि ज्ञान अज्ञान ॥ मनपर्जय केवल निर्दोष, इनके भेद प्रतच्छ परोष ॥ मतिश्रुतिज्ञान आदिके दोय। ये परोष जानें सब कोय ॥ अवधि और मनपरजय ज्ञान। एकदेशवरच्छ प्रमान ॥ केवल ज्ञान सकल परतच्छ। लोकालोक विलोकन चच्छ ॥ जहां अनंत दरबपरजाय। एक वार सब झलकैं आय ॥ दर्शन चार आठ विधि ज्ञान, ये व्यवहार चिन्ह जी जान ॥ निहचैरूप चिदातम येह। शुद्ध ज्ञान दर्शन गुनगेह॥ ५० ॥ कल्पित असदभूत व्यवहार, तिस नय घटपटादि कर्तार। अनुपचरित अजथारथरूप, कर्मपिंडकरता चिद्रूप ॥ जब अशुद्धनिहचैबल धरै, तब यह रागदोषको हरै। यही शुद्ध निहचै कर जीव, शुद्धभावकरतार सदीव॥ भोगताकथन। सोरठा—प्रानी सुख दुख आप, भुगतै पुद्गलकर्मफल। यह व्यवहारी छाप, निहचै निज सुखभोगता ॥ दोहा—देहमात्र व्यवहार कर, कह्यो ब्रह्म भगवान ॥ दरवित नयकी दिष्टिसों, लोकप्रदेशसमान ॥ अड़िल्ल--लघुगुरु देहप्रमान, जीव यह जानिये। सो विथार संकोच, शक्तिसों मानिये ॥ ज्यो भाजनपरवान, दीपदुति विस्तरै। समुदघात विन राम, यही उपमा धरै ॥

समुद्घातकथन।

चौपाई—तैजस कारमानजुत भेश, बारह निकसैं जीवप्रदेश। छाड़ैं नहीं मूलतन ठाम, समुदघातविधि याको नाम ॥ सातभेद सब ताके कहे, गोमट-सार देखि सरदहे। प्रथम वेदना नाम बखान, दुतिय कषाय नाम उर आन ॥ तन विकुर्बना तीजा येह, चौथा मारणांत सुनि लेह। पंचम तैजस संज्ञा जान, षष्ठम आहारक अभिधान ॥ केवल समुदघात सातमा, ऐसी शक्ति धरै आतमा

चौपाई—दुसह वेदनाके वश जहां, जीवप्रदेश कढ़त हैं तहां। किसी जीवकै हो परवान, पहला समुदघात यह जान ॥ ६० ॥ जब काहो रिपु करन विधंश, बाहर जाहिं जीवके अंश। अतिकषायसों हो है तेह, दूजा समुदघात है येह ॥ नाना जात विक्रियाहेत, निकसैं ब्रह्मप्रदेश सचेत। देवनारकीके यह होय, तीजा समुदघात है सोय ॥ किसी जीवके मरते समैं, हंसअंश तन बाहर गमैं। बांधी गतिके परसन काज, चौथा भेद कह्यो जिनराज ॥ जो मुनिकै कछु कारन पाय, उपजै क्रोध न थांभ्यो जाय। तैजस तनको औसर यही, वामकंध सों प्रगटै सही ॥ ज्वालामई काहलाकार, अरुण सिंदूरपुंज उनहार। बारह जोजन दीरघ सोय, नौ जोजन विस्तीरन होय ॥ दंडकपुरवत प्रलय करेय, साधुसमेत भस्म करदेय। अशुभकषाय यही विख्यात, अब सुनि शुभ तैजसकी बात ॥ दुर्भिच्छादिक दुख अविलोय, दयाभाव मुनिवरके होय। शुभआकृतिसों निवसैं ताम, दक्षिण कांधेसों अभिराम ॥ पूरबकथित देह विस्तार, रोगसोग सब दोष निवार। फिर निज थान करै पैसार, पंचम समुदघात यह धार ॥ करत साधु पदअर्थ विचार, मन संशय उपजै तिहिं बार। तहां तपोधन चिंता करै, कैसे विकलप निरवरै ॥ भरतखेत आदिक भूमाहिं, अब ह्यां निकट केवली नाहिं। तातैं करिये कौन उपाय, विनभगवान भरम नहिं जाय ॥ ७० ॥ तब मुनि मस्तकसों गुनगेह। प्रगट होय आहारक देह ॥ एक हाथ तिस परमित कही। श्रीजिनशासनसों सरदही ॥ फटिक वरन मनहरन अनूप। तहां जाय जहँ केवलभूप ॥ दर्शन करि संदेह मिटाय। फेर आनि निजथान समाय ॥ अष्टम समुदघात यह मान। मुनिके होंहि छठैं गुणथान ॥ जब सजोगि जिनके परदेश। बाहर निकसैं अलख अभेश ॥ दंड कपाटादिक विधि ठान। क्रमसों होंहिं लोक परवान ॥ सप्तम समुदघात यह भाय। शरधा करो भविक मन लाय ॥ मरणां तक आहारक जेह। एक दिशागत जानो येह ॥ बाकी पांच रहे जे आन। ते सब दशों दिशागत जान ॥ दुविधिरास संसारी जीव। थावर जंगमरूप सदीव तहां पांच विधि थावरकाय। भू जल तेज वनस्पति बाय ॥ चार जातके जंगम जन्त। चलतःफिरत दीखैं बहुभन्त ॥ संख सीप कोड़ी कृमि जोक। इत्यादिक वेइंद्री थोक ॥ चैंटी दीम कुंथ पुनिआदि। ये ते इन्द्री जीव अनादि ॥ माखी-

माछर भृंगी देह। भ्रमरप्रमुख चौइन्द्री येह ॥ देवनारकी नर विख्यात। केतक पशू पचेन्द्री जात ॥ ये सब त्रस थावरके भेव। इनको विषयछेत्र सुन लेव ॥ छप्पय-फरस चारसै पांच, जीभ चोसठ सो नासा। दृगजोजन उनतीस, शतक चौवन क्रम भासा ॥ दुगुन असैनी अन्त, श्रवन वसु सहस धनुष सुनि। सैनी सपरस विषै, कह्यो नौ जोजन श्रीमुनि ॥ नौरसन घ्राण नो चक्षुप्रति, सैंता-लीसहजार गिन। दोसै त्रेसठि बारहश्रवणविषै क्षेत्रपरवान भन ॥८०॥ चौपाई—एकेन्द्री सुच्छम अरु थूल। तीनभेद विकलत्रय मूल ॥ दोय प्रकार पचेन्द्री कहे मनसों रहित सहित सरदहे ॥ दोहा—सातों ही परयाप्तैं अपरयाप्तैं जान। चौदह जीवसमास यह, मूलभेद उर आन ॥ चौपाई—ऐसे हो चौदह गुणथान। चौदह मारगणा उर आन ॥ जब लग है इन रूपी राम। तबलों संसारी यह नाम अड़िल्ल—यह अनादि संसार, जीवकी भूल है, इस कारजमें और, हेतु नहिं मूल है ॥ तौ अशुद्ध नयन्याय, जीव जगरूप है। दिव्यदृष्टिसों देख, सबै शिवभूप है ॥ दोहा—भये कर्मसंयोगतैं, संसारी सब जीव। साधनबल जीतें करम, तब यह सिद्धसदीव ॥ अडिल्ल—अष्ट गुणातमरूप कर्ममल मुक्त हैं। थिति उतपत्ति विनाश, धर्मसंयुक्त हैं। चरम देहतैं कछुक, हीन परदेश हैं। लोकअग्रपुर बसैं परम परमेश हैं। दोह—अथिर अर्थपरयाय जो, हानिवृद्धमय रूप। तिसमैं सिद्ध बखानिये, उतपति नाशसरूप ॥ ज्ञेय त्रिविधि परनति धरै, ज्ञान तदा-कृत भास। यों भी शिवपदमें सधै, थित उतपत्ति विनाश ॥ अथवा सब परनति नसे, भइ सिद्धपर्याय। शुद्धजीव निश्चल सदा, यों तीनों ठहराय ॥ अड़िल्ल—वरन पांच रसपांच, गंध दो लीजिये। आठ फरस गुनजोर, बीस सब कीजिये। जीवविषैं इनमाहिं, एक नहिं पाइये ॥ यातैं मूरतिहीन। चिदातक गाइये ॥९०॥ जगमें जीवअनादि, बंध संजोगतैं। छूटो कबही नाहिं, कर्मफलभोगतैं ॥ असद्भूत व्यवहार, पक्ष जो ठानयै ॥ तो यह मूरतिबंत, कथंचित मानयै ॥

दोहा—प्रकृतिबंध थितिबंध पुनि, अरु अनुभाग प्रदेश। चारभेद यह बंध के, कहे पास परमेश ॥ बंधविवर्जित आतमा, ऊरधगमन करेय। एक समय करि सरलगति, लोकअंत निवसेय ॥ ज्यों जलतूम्बी लेपविन, ऊपर आवै सोय, त्यों ऊरध गतिराम कह, कर्मबंध विन सोय ॥ जबलों चउविधि बंधसों, बंधे

जीव जगमाहिं । सरलवक्र तबलों चलै, विदिशामें नहिं जाहिं ॥ अमृतचन्द्र मुनिराज कृत, किमपि अर्थ अवधार । जीव तत्ववर्णन लिख्यो, अब अजीव अधिकार ॥ अजीवतत्व कथन—पुद्गल धर्म अधर्म नभ, कालनाम अवधार । ये अजीव जड़तत्वके, भेद पंच परकार ॥ तिनमें पुद्गल दोय विधि, बन्धरूप अणुरूप । यहसबहै रुपी दरव चारों और अरूप ॥ अणुरूपी पुद्गल दरव, छेद भेद नहिं जास । अगनि जलादिक जोग सों, होय न कबही नास ॥ जा अविभागीमें नहीं, आदि मध्य अवसान । शब्द रहित पर शब्दको कारणभूत बखान ॥ १०० ॥ सोरठा—भू जल पावक वाय, हेतुरूप सबको यही । बहुविधि कारन पाय, वरणादिक पलटैं तुरत ॥ अविनाशी जिसमाहिं, सदा पंच गुण पाइये । इन्द्रीगोचर नाहि, अवधि ज्ञान सों जानिये ॥ दोहा—वरण पांच रस पांचमें, एक एक ही सोय । एक गन्ध दो गन्धमें, आठ फरसमें दोय ॥ ये परमाणु पंचगुण, सात बंधमें जान । वर्णादिक जे बीस हैं, ते गुण जात बखान ॥ आगे पुद्गल बंधके, सुनो भेद षट सोय ॥ सरधा करतैं समझतैं, संशय रहै न कोय ॥ चौपाई—प्रथम भेद अतिथूल बखान । दुतिय थूल संज्ञा उरआन ॥ तृतिय थूल सूक्षम सरदहो । सूक्षमस्थूल चतुर्थम गहो ॥ पंचम सूक्षम नाम गिनेह । षष्ठम अति सूक्षम षट येह ॥ अब इनको वरणन विरतन्त । सुनो एक मनसों मतिवंत ॥ खण्डखण्ड कीने जे बन्ध । फेर न मिलै आपसों सन्ध ॥ माटी ईंट काठ पाषान । इत्यादिक अतिथूल बखान ॥ छिन्नभिन्न हों फिरि मिलि जाहिं । ऐसे पुद्गल जे जगमाहिं ॥ घृत अरु तेल जलादिक आन । ये सब थूल कहे भगवान ॥ देखत लगैं दिष्टिसों थूल । करमें गहे जाहिं नहि मूल ॥ धूप चांदनी आदि समस्त । जान थूलते सूक्षम वस्त ॥ ११० ॥ आंखनसों दीखै नहिं जेह । चारों इन्द्रीगोचर तेह ॥ विविध सपर्श शब्द रस गंध । सूक्षमस्थूल जानते बंध ॥ नाना भांति वर्गना पिण्ड । कारमाण परमाणू पिण्ड । काही इन्द्रीगोचर नाहिं । ते सूक्षम जिनशासनमाहिं ॥ कर्मवर्गना सो ही कहा । जो अतिही सूक्षम सरदहा ॥ दुणकआदि परमाणू बंध । सो सूक्षम सूक्षम सुन बंध ॥ षट प्रकार पुद्गल इहिभाय । मुख्य गौन सबमें गुण थाय इनही सों निर्मापत लोक । और न दीखै दूजो थोक ॥ शब्द बंध छाया तम

जान । सूक्षम थूल भेद संठान ॥ अरु उदोत आआप बहु भाय । यह दश विधि पुद्गलपर्याय ॥ धर्म द्रव्य कथन —जब जड़जीव चलै सत भाय। धर्मदरव तब करैं सहाय ॥ तथा मीनको जलआधार । अपनी इच्छा करत विहार॥ अधर्म द्रव्यकथन—यों ही सहज करै थित होय । तब अधर्म सहकारी होय ॥ ज्यों मगमें पंथीको छाहिं । थिति कारन है बलसों नाहिं ॥ आकाशद्रव्यकथन— जो सब द्रव्यनको अवकाश । देय सदा सो द्रव्य आकाश ॥ ताके भेद दोय जिनकहे । लोक अलोक नाम सरदहे ॥ जहं जीवादि पदारथ वास । असंख्यात परदेश निवास ॥ लोकाकाश कहावै सोय । परैं अलोक अनन्ता होय ॥ काल-द्रव्य कथन—लोकप्रदेश असंखे जहां, एक एक कालाणू तहां ॥ रत्नराशिवत निवसैं सदा । द्रव्यसरूप सुथिर सर्वदा ॥ बरतावनलक्षण गुण जास । तीन-काल जाको नहिं नास ॥ समय घड़ी आदिक बहुभाय । ये व्यवहारकालपर्याय ॥ पहले कहौ जीव अधिकार, और अजीव पंचपरकार ॥ ये ही छहों द्रव्य समु-दाय, कालविना पंचासति काय ॥ दोहा—बहु परदेशी जो दरव, कायवन्त सो जान । तातैं पच अधिकाय हैं, काय काल विन मान ॥ सवैया छन्द— जीवर धर्म अधर्म दरव ये, तीनों कहे लोक परवान । असंख्यात परदेशी राजैं, नभ अन्तर परदेशी जान ॥ संख असंख अनन्त प्रदेशी, त्रिविधिरूप पुद्गल पहिचान ॥ एक प्रदेश धरे कालाणु, तातैं काल कायविन मान ॥ १२४ ॥ दोहा कालकाय बिन तुम कहो, एक प्रदेशी जोय ॥ पुद्गल परमाणं तथा, सो सकाय क्यों होय ॥ अलख असंख्य दरव कालाणू भिन्नभिन्न जगमाहिं वसाहिं । आपसमाहिं मिलै नहिं कबहीं, तातैं कायवन्त सो नाहिं । रूपसचिक्वनतैं पर-माणू , ततखिन बन्धरूप हो जाहिँ । यों पुद्गलको काय कल्पना, कही जिने-श्वरके मतमाहिं ॥ आकाश प्रदेशरूप तथा शक्ति कथन जितने मान एक अविभागी, परमाणू रोकै आकाश॥ ताको नाव प्रदेश कहावैं, देय सर्व दरवन को वास । तहां एक कालाणू निवसै, धर्म अधर्म प्रदेश निवास । रहैं अनन्त प्रदेश जीवके, पुद्गल बंध लहैं अवकास ॥ पोमावती—धर्म अधर्म काल अरु चेतन चारों दरव अरूपी गाये ॥ तातैं एक आकाश देशमें, प्रभु सबके परदेश समाये ॥ मूरतवन्त अनन्ते पुदगल, तेउ नभमें क्योंकर माये ॥ यह संशय सम-

भाय कहो गुरु, दास होय हम पूछन आये ॥ सोरठा—बहु प्रदीप परकाश, यथा एक मन्दिर विषै ॥ लहैं सहज अवकाश, बाधा कछु उपजै नहीं ॥ दोहा—त्यों हीं नभ परदेश में, पुद्गल बंध अनेक ॥ निराबाध निवसैं सही, ज्यों अनन्त त्यों एक । १३० । आस्रवतत्वकथन—जो कर्मनको आगमन, आस्रव कहिये सोय । ताके भेद सिद्धांतमें, भावित दरवित होय ॥ चौपाई—मिथ्या अविरत योग कषाय । और प्रमाददशा दुखदाय ॥ ये सब चेतनको परिनाम । भावास्रव इनहींको नाम ॥ तिनही भावनके अनुसार, ढिगवरती पुद्गल तिहि बार ॥ आवैं कर्म भावके जोग, सो दरवित आस्रव अमनोग ॥ बंधतत्त्वकथन—सोरठा—रागादिक परिनाम, जिनसों चेतन बन्धत है । तिन भावनको नाम, भावबन्ध जिनवर कह्यो ॥ दोहा—जो चेतन परदेश पै, बैठे कर्म पुरान ॥ नये कर्म तिनसों बधैं, दरवबंध सो जान ॥ संवरतत्त्वकथन—पद्धड़ी—आस्रव अविरोधन हेत भाव । सो जान भावसंवर सुभाव ॥ जो दर्वित आस्रव शुद्धरूप । सो होय दरव संवर सरूप ॥ वृत पंचसमिति पांचों सुकर्म । वर तीन गुप्ति दश भेद धर्म ॥ बारह विधि अनुप्रेक्षा विचार । बाईस परीषहविजय सार ॥ पुनि पाँच जात चारितअशेष । ये सर्व भावसंवर विशेष ॥ इन सों कर्मास्रव रुकै एम । परनालीके मुहँ डाट जेम ॥ दोहा—शुभ उपयोगी जीवके, व्रत आदिक आचार । पापास्रव अविरोधको, कारण है निर्धार ॥ शुद्ध उपयोगी साध जे, तिनकै ये आचार । पुन्यपाप दोऊनको, संवरहेत विचार ॥ १४० ॥ निर्जरातत्वकथन चौपाई---तपबल कर्म तथा थिति पात । जिन भावों रस दे खिर जात ॥ तेई भाव भावनिर्जरा । संवरपूरवहै शिवकरा ॥ बन्धे कर्म छूटैं जिसवार; दरवनिर्जरा सो निर्धार ॥ इहिविधि जिनशासनमें कहिया, समकितवन्त साँच सरदहिया ॥ मोक्षतत्वकथन--जो अभेद रत्नत्रिय भाव, सोई भावमोक्ष ठहराव । जीव कर्मसों न्यारा होय । दरव मोक्ष अविनाशी सोय ॥ ये सब सात तत्व वरनये, पुन्यपाप मिलि नौपद भये ॥ आस्रवतत्वविषै वे दोय । गर्भित जान लीजिये सोय ॥ दोहा-जीव यथारथदिष्टि सों, सरधै तत्व सरूप ॥ सो सम्यकदर्शन सही, महिमा जास अनूप ॥ नयप्रमाण निक्षेप करि, भेदाभेद विधान, जो तत्वनको जाननो, सोई सम्यक्ज्ञान ॥ सो सामान्य विलोकिये,

दर्शन कहिये जोय। जो विशेष कर जानिये, ज्ञान कहावै सोय॥ चारित किरिया रूप है, सो पुनि दुविधि पवित्त॥ एक सकल चारित्र है, दुतिय देश चारित्त॥ अड़िल्ल--जहां सकल सावद्य, सर्वथा परिहरै। सो पूरन चारित्र, महा मुनिवर धरै॥ लेश्या त्याग जहं होय, देशचारित वही। सो ग्रहस्थको धर्म ग्रही पालै सही॥ दोहा---तीर्थंकर निर्ग्रन्थपद, धर साधो शिवपंथ। सोई प्रभु उपदेशियो, मोक्षपंथ निर्ग्रंथ। १५०। दशविधि बाहिज ग्रंथमें, राखै तिल तुस मान। तौ मुनिपद कहिये नहीं, मुनि विन नहिं निर्वान॥ जे जन परिग्रहवंत को, मानै मुक्तिनिवास। ते कबहो न मुकत लहैं, भ्रमैं चतुरगतिवास॥ क्रोधादिक जबही करैं, बंधै कर्म तब आन। परिग्रहके संयोगसों, बंधनिरन्तर जान॥ बन्ध अभावै मुक्ति है, यह जानै सब लोय। बन्ध हेत वरतैं जहां, मुक्ति कहाँ तैं होय॥ पश्चिम भान न ऊगवै, अगनि न शीतल होय। यथाजात जिनलिंग विन, मोक्ष न पावै कोय॥ छप्पय--धन्य धन्य ते साधु, देह भव भोग विरच्ये। धन्यधन्य ते साधु, आप अपने रस रच्ये॥ धन्य धन्य ते साधु, पीठ जगकी दिशि कीनी। धन्यधन्य ते साधु, दिष्टि शिव सन्मुख दीनी॥ तजि सकल आस बनवास वस, नगन देह मद परहरे। ऐसे महन्त मुनिराज प्रति, हाथ जोर हम सिर धरे॥ चौपाई--पंच महाव्रत दुद्धर धरैं। सम्यक पांच समिति आदरैं॥ तीन गुप्ति पालैं यह कर्म। तेरहविधि चारित मुनिधर्म॥ यातैं सधैं मुक्तिपद खेत। गिरही धर्म सुरगसुख देत॥ सो एकादश प्रतिमारूप। ते वरनो संक्षेप सरूप॥ दर्शन प्रतिमा--पंच उदंवर तीन प्रकार। सात व्यसन इनको परिहार॥ दर्शन होय प्रतिज्ञायुक्त। सो दर्शनप्रतिमा जिनउक्त॥ सप्तव्यसननिषेध, ढाल--श्रीगुरुशिक्षा सांभलौ, ( ज्ञानी ) सात व्यसन परित्यागोरे॥ ये जगमें पातक बड़े, (ज्ञानी) इन मारग मत लागोरे॥ १६०॥ जूवा खेलन मांडिये, (ज्ञानी) जो धन धर्म गंवावैरे॥ सब विसनन कोबीज है, (ज्ञानी) देखंता दुख पावैरे॥ रजवीरजसों नीपजै, (ज्ञानी) सो तन मास कहावैरे॥ जीव होते बिन होय ना, (ज्ञानी) नांव लियां घिन आवैरे॥ सड़ि उपजै कीड़ा भरी (ज्ञानी) मद दुर्गन्ध निवासोरे॥ छीयांसों शुचिता मिटै, (ज्ञानी) पीयां बुद्ध बिनासोरे। धिक वेश्या बाजारनी, ( ज्ञानी ) रमती नीचन साथैरे॥ धनकारन तन पापिनी,

( ज्ञानी ) वेचौ व्यसनी हाथैरे ॥ अति कायर सबसों डरै ( ज्ञानी ) दीन मिरग वनचारीरे ॥ तिनपै आयुध साधते, ( ज्ञानी ) हा अतिक्रूर शिकारीरे ॥ प्रगट जगतमें देखिये, ( ज्ञानी ) प्रानन धनतें प्यारोरे ॥ जे पापी परधन हरैं ( ज्ञानी ) तिनसम कौन हत्यारोरे ॥ परतिय व्यसन महा बुरो, ( ज्ञानी ) यामैं दोष बड़ोरोरे ॥ इहि भव तनधनयश हरै, ( ज्ञानी ) परभव नरकबसेरोरे ॥ पांडव आदि दुखी भये, ( ज्ञानी ) एक व्यसन रति मानीरे ॥ सातनसों जे शठ रचे (ज्ञानी) तिनकी कौन कहानीरे ॥ दोहा—पच उदंबर फल कहे, मधुमद मास मकार । इनके दूषण परिहरो, पहली प्रतिमा धार ॥ व्रतप्रतिमा—चौपाई--पांच अणुव्रत गुणव्रत तीन । शिक्षाव्रत चारों मलहीन ॥ बारहव्रत धारैं निर्दोष । यह दूजी प्रतिमा व्रतपोष ॥ १७० ॥ दोहा—अब इन बारह व्रतनको, लिखों लेश विरतंत । जिनको फल जिनमत कह्यो, अच्युतस्वर्ग पर्यन्त ॥ ढाल--जो नित मनवचकायसों, कृतआदिक सोंजैहोंजी ॥ त्रसको त्रास न दीजिये, प्रथम अणुव्रत एहों जो ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं । झूठवचन नहि बोलिये, सबही दोष निवासो जी ॥ दूजोव्रत सो जान ये, हितमित बचनसंभाखो जी ॥ बारह व्रत विधि वरणऊं ॥ भूलो विसरो भूपरो, जो परधन बहु भायो जी ॥ विन दीये लीजै नहीं, जनम दुखदायो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ व्याही वनिता होय जो, तासों कर संतोषो जी । परिहरिये परकामिनी, यासम और न दोषो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ धनकन कंचन आदि दे, परिग्रह संख्या ठानो जी । तिशना नागिन वश करो, यह व्रत मंत्र महानो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ अवधि दशों दिशि खेतकी, कीजै संवर जानो जी । बाहर पांव न दीजिये, जब लग घटमें प्रानो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ कर मरयादा कालकी, करिये देश प्रमानो जी ॥ वन पुर सरिता आदि दे, नित्त गमनको थानो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं । जहां स्वारथ नहिं संपजै, उपजै पाप अपारो जी । अनरथदंठ वही कहो, त्यागै पंच प्रकारो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ सामायिक विधि आदरो, थल एकांत विचारो जी । उर धरिये शुभ भावना, आरत रौद्र निवारो जी ॥ बारह व्रत विधि वरणऊं ॥ १८० ॥ पोषह व्रत आराधिये, चारौं परवमंझारो जी । चहुंविधि भोजन परिहरो, घरआरँभ

सब छारो जी। बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ भोजन पान तँबोल त्रिय, खटभूषन बहु एमो जी। भोगयथा उपभोग है, कब इनको जम नेमो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ उत्तम अतिथिनको सदा, दीजै चौविधि दानो जी। मान बड़ाई त्याग कै, हिरदै सरधा आनो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ अन्त समय संलेखणा, कीजै शक्ति संभालो जी ॥ जासों व्रत संजम सबै, ये फल देहिं विशालो जी ॥ बारहव्रत विधि वरणऊं ॥ चौपाई—तीनकाल सामायिक करै। पांचो अतीचार परिहरै ॥ शत्रु मित्र जाने इक सार। सो नर तीजी प्रतिमाधार परव चतुष्टय तजि आरंभ, पोषह व्रत मांड़ै मनथंभ। सोलह पहर धरै शुभ ध्यान, सोई चौथी प्रतिमावान ॥ त्यागैंहरी जात जावंत, दल फल कंद बीज बहु भंत। प्रासुक जल पीवै तजि राग, सो सचित्तत्यागी बड़भाग ॥ जो दिन में मैथुन परिहरै, मनवचकाय शील दिढ़ धरै। षष्टमप्रतिमाधारी धीर, यह जघन्यश्रावक वरबीर ॥ जो सब नारि सर्वथा तजै, नौ विधि सदा शील व्रत भजै। काम कथारत कबहिं न होय, सप्तमप्रतिमाधारी सोय ॥ जिन सब तजे विनज व्योहार, निरारंभ वरतैं मद छार, अहनिशि हिंसासों भयभीत। अष्टमप्रतिमावंत पुनीत ॥ १६० ॥ जो समस्त परिग्रह परित्याग, उचितवसन राखै विनराग। सो नौमी प्रतिमा निर्ग्रन्थ, यह मध्यम श्रावकको पंथ ॥ जो ग्रहस्थ कारज अघमूल, तिनको अनुमति देय न भूल। भोजनसमयबुलायो जाय, सों दशमी प्रतिमा सुखदाय ॥ दोहा—अब एकादशमी सुनो, उत्तम प्रतिमा सोय ताके भेद सिधान्तमें, छुल्लक ऐलक दोय ॥ चौपाई—जो गुरुनिकट जाय व्रत गहै, घर तजि मठ मंडपमें रहै। एकवसन तन पीछी साथ। कटिकोपीन कमंडल हाथ ॥ भिक्षा भाजन राखै पास, चारों परव करै उपवास। ले उदंडभोजन निर्दोष, लाभ अलाभ राग ना रोष ॥ उचित काल उतरावै केश, डाढ़ी मूंछ न राखै लेश। तपविधान आगम अभ्यास, शक्तिसमान करै गुरुपास ॥ यह छुल्लक श्रावककी रीत, दूजो ऐलक अधिक पुनीत। जाके एक कमर कोपीन, हाथ कमंडल पीछी लीन ॥ विधिसों बैठि लेहि आहार, पानिपात्र आगम अनुसार करै केशलुंचन अति धीर, शीत घाम सब सहै शरीर ॥ सोरठा—पानिपात्र आहार, करै जलांजुलि जोड़ि मुनि। खड़ो रहै तिहिबार, भक्तिरहित भोजन

तजै ॥ दोहा—एक हाथपै ग्रास धरि, एक हाथसे लेय ॥ श्रावकके घर आयके, ऐलक अशन करेय ॥ २०० ॥ यह ग्यारहप्रतिमा कथन, लिख्यो सिधांत निहार और प्रश्न बाकी रहे, अब तिनको अधिकार ॥ चौपाई—जे जगमें पापी परधान सात व्यसनसेवक अज्ञान । रुद्रध्यान धारैं अघमई । अति ही क्रूर कर्म निर्दई ॥ झूठवचन बोलैं सत छोर । परधन परवनिताके चोर ॥ बहु आरंभी बहुपरिग्रही । मिथ्यामतको पोषैं सही ॥ चंड कषायी अधिक सराग । जिनप्रतिमानिंदक निर्भाग ॥ मुनिवर निंदि पाप सिर लेहिं । जैनधर्मको दूषण देहिं ॥ नीचदेवसेवा रस रचे । धरैं कृश्नलेश्या मद मचे ॥ इत्यादिक करनीरत रहैं । ऐसे नीच नरकगति लहैं ॥ छप्पय—सप्तमसों पशु होय, देश संयम न संभाले ॥ छठे नरकसों मनुष, होय व्रत नाहीं पालै ॥ पंचमसों व्रत धरै, मोक्षगतिको नहिं साधै चौथेसों शिव जाय, नहीं तीरथपद लाधै ॥ सब शुभ्रवाससों आयकै, वासुदेव नहिं भव धरै ॥ प्रति वासुदेव बलदेव पुनि, चक्रवर्ती नहिं अवतरै ॥ चौपाई—मायाचारी जे दुठ जीव । परपंचनमें निपुन अतीव ॥ झूठ लिखैं अरु चुगली खाहिं । झूठी साखि भरत भय नाहिं ॥ शील न पालैं मोहउदोत । लेश्या जिन कै नील कपोत ॥ आरतध्यानी धर्मविहीन । पशुपर्याय लहैं अकुलीन ॥ आरत रौद्ररहित नीराग । धर्म शुकल ध्यानी बड़भाग ॥ जिनसेवक पालैं व्रत शील कसैं करण मदमाते कील ॥ जिनप्रतिमा जिनमन्दिर ठवैं । सात खेत उत्तम धन बवैं ॥ सदाचार सुन श्रावक होय । जथाजोग पावै सुर लोय ॥ २१० ॥ सहज सरल परनामी जीव । भद्रभाव उर धरैं सदीव ॥ मंद मोह जिनके देखिये । मंदकषायप्रकृति पेखिये ॥ अलपारम्भ अल्प धन चहैं, उर कपोतलेश्या निर्वहैं ॥ पुण्यपाप नहिं बरतैं दोय । मिश्रभावसों मानुष होय । परके दोष सुनैं मन लाय । विकथा वानी बहुत सुहाय ॥ कुकविकाव्य सुन हरषैं जोय । ते बहरे उपजैं परलोय ॥ पढ़ैं सुछंद विवेक न करैं । मृषापाठ विकथा विस्तरैं ॥ परनिंदा भावैं बहुभाय । निजपरशंसा करै बढ़ाय ॥ मलमूत्रादिक भोजन काल । मौन छांड़ि बोलैं बाचाल ॥ झूठ कहत कछु शंकैं नाहिं ते गूंगेजनमे जगमाहिं । परतियमुख देखैं करि नेह, निरखैं सब योनादिक देह । वधबंधन याचैं धरि राग । ते मरि आँधे होंहिं अभाग ॥ जे नर करैं कुतीरथ गौन ।

बहुत बोझ लादैं विनमौन ॥ वृथाविहारी देख न चलैं। होय पंगु ते पातक फलैं ॥ नीतवनज करि लछमी लेहिं। ओछा लेंहि न अधिका देहि ॥ अल्पवित्त दानादिक करैं ते नर दरवधनी अवतरैं ॥ जे धन पाय धरैं अभिमान। समरथ होकर देहिं न दान धनकारन छलछिद्र कराहिं। बढ़त परिग्रह धापैं नाहिं, लक्ष्मीबन्त कृपन जन जेह परभव होंहिं दरिद्री तेह ॥ मंदकषायी सरलसुभाव। अहनिशिवरतैं पूजाभाव ॥२२०॥ निज वनितासंतोषी सदा। मंदराग दीखैं सर्वदा ॥ दुराचार जिनके नहिं होय, पुरुषवेद पावैं सुरलोय ॥ जे अतिकामी कुटिल अतीव, महा सरागी मोहित जीव। परवनितारत शोकसंजुक्त, ते कामिनितन लहैं नियुक्त ॥ राग अन्ध अति जे जगमाहिं। कामभोगसों तृपतै नाहिं ॥ बेश्यादासी रक्तकु शील। ते नर लहैं नपुंसक—डील ॥ मनवचकाय महानिर्दई, बध बंधन ठानैं अघमई ॥ परको पीड़ा बहुविधि करैं, ते जिय अल्प आयु धरि मरैं ॥ कृपावन्त कोमल परिणाम, देखि विचारि करें सब काम। जीवदयामें तत्पर सदा, परको पीड़ा देहिं न कदा ॥ सबही जीवनसों हितभाव, धरैं पुरुष ते दीरघ आव। जे जिन-यज्ञपरायण नित्त, पात्रदानरत शीलपवित्त ॥ इन्द्रीजीत हिये संतोष, ते नर भोग लहैं व्रत पोष। पूजादान विमुख मदलीन, इन्द्रीलुब्ध दयागुणहीन ॥ दुराचार दुरध्यानी लोग, इनको प्रापत होहि न भोग। समय विचारि पढ़ैं जिनग्रंथ, और पढ़ावैं जे शुभपंथ ॥ हितसों धर्मदेशना कहैं, ते परभव पण्डितपद लहैं। ज्ञानगरव हिरदै धर लेहिं, जिनसिधांतको दूषन देहिं ॥ इच्छाचारी पढ़ैं अशुद्ध, ज्ञानविनयवरजित जड़बुद्ध। पढ़ने जोग पढ़ावैं नाहिं, ऐसे मरि मूरख उपजाहिं ॥ २३०॥ अनाचाररत आरंभवान, परको पीड़न करैं अयान। पापकर्म-रत धर्म न गहैं, ते परभवमें रोगी रहैं ॥ परदुख देखि हरख उर धरै, परव-निता परधन जो हरै ॥ नर पशु जीव विछोहैं जोय। सो पुत्रादि वियोगी होय ॥ नीच कर्म रत करुणा नाहिं। हाथ पांव छेदैं छिनमाहिं। जे परको उपजावै पीर। ते नर पावैं विकल शरीर ॥ जो मिथ्या मत मदिरा पियें, पापसूत्रकी शरधा हियें। धर्म निमित्त जीव बध करैं। महा कषाय कलुषता धरैं ॥ नास्तिकमती पाप मग गहैं। ते अनन्त संसारी रहैं। रतन त्रयधारी मुनिराज। आगमध्यानी धर्म जहाज ॥ इच्छारहित घोरतप करैं। कर्म नाशकर भवजल तिरैं। उत्तमदेवन

में शिरनाय। पूजैं परम साधुके पाय ॥ साधरमी वत्सल मुनिप्रीत। उत्तमगोत बधै इहि रीति। जे जिन यती जिनागम जान। नमैं नहीं शठ करि अभिमान॥ मानै नीच देव गुरुधर्म। ये सब नीच गोतके कर्म। जिनके हिये रमैं वैराग। धारैं संजम त्रश्ना त्याग ॥ अति निर्मल चारित भंडार। ज्ञान ध्यान तत्पर अविकार। ख्याति लाभ पूजा नहिं चहैं। ते अहमिंद संपदा गहैं ॥ पंच करण बैरी वश आन। चारित पालै अति अमलान। दुद्धर तप कर सोखै काय। चक्री होय देवपद पाय ॥२४०॥ जे सम्यकदृष्टी गुणग्रही। सोलह कारन भावैं सही। ते तीर्थंकर त्रिभुवनधनी। होहिं तीन जगचूड़ामनी ॥ दोहा—इहिविधि पूछनहारको, समाधान जिनराज। कीनो गणधरदेवप्रति, जगतजीव हित काज ॥ वानी सुन बारह सभा, भयो सबन आनन्द। जैसे सूरजके उदय, विकसै वारिजवृन्द ॥ वचन किरणसों मोहतम, मिट्यो महा दुखदाय। वैरागे जगजीव बहु, काललब्धि बल पाय ॥ चौपाई—केई मुक्तिजोग बड़भाग। भये दिगंबर परिग्रह त्याग। किनही श्रावक व्रत आदरे। पशुपर्याय अणुव्रत धरे ॥ केई नार अर्जिका भईं। भर्ताके संग वनको गईं। केई नर पशु देवी देव। सन्यकरत लह्यो तहां एव ॥ केई शक्तिहीन संसार। व्रत भावना करी सुखकार। पूजादान भाव परिनये। जथाजोग सब सेवक भये ॥ दोहा—कमठ जीव सुर जोतिषी, करि वचनामृत पान। वमौं बैर मिथ्यात्व विष, नमो चरण जुग आन॥ सम्यकदरशन आदर्यो, मुक्ति तरोवर मूल। शंकादिक मल परिहरे, गई जनमकी शूल ॥ तहां सातसै तापसी, करत कष्ट अज्ञान। देखि जिनेश्वर संपदा, जग्यो जथारथ ज्ञान ॥२५०॥ दई तीन परदक्षिणा, प्रणमें पारसदेव। स्वामि चरण संयम धरो, निंदो पूरव टेव ॥ धन्य जिनेश्वरके वचन, महामंत्र दुखहंत। मिथ्यामत विषधर डसे, निर्विष होंहिं तुरंत ॥ कहां कमठसे पातकी, पायो दर्शन सार। कहां पापतप तापसी, धर्यो महाव्रत भार ॥ जिनके वचनजहाज चढ़ि, उतरे भवजलपार। जे प्रतच्छ आये शरन, क्यों न होय उद्धार ॥ अब श्रीगणधरदेव तहं, चार ज्ञान परवीन। जिस समुद्र तैं अर्थजल, मति भाजन भर लीन ॥ नाम स्वयंभू दयानिधि, विविध रिद्धि गुण खेत। द्वादशांग रचना करी, जगतजीव हित हेत ॥ परमागम अमृत जलधि, अवगाहें मुनिराय। ज-

न्मजरामृत दाह हरि, होंय सुखी शिव पाय ॥ चौपाई—प्रथम एक सौ बारह कोड़ । लाख तिरानवै ऊपर जोड़ । बावन सहस पांच पद सही । द्वादशांगकी परिमित कही ॥ पद्धड़ी—इक्यावन कोड़ी लाख । चौरासी सहस सिलोक भाख । छस्सै साढ़े इक्कीस जान । यह एक महापदको प्रमान ॥ दोहा—इहि विधि सभा समूह सब, निवसै आनंद रूप । मानों अमृत नीरसों, सिंचत देह अनूप ॥२६०॥ चौपाई—तब सुरेश उठि विनती करी, हाथ जोर सिर अंजुलि धरी । भो जगनायक जगआधार, तीन भवनजनतारनहार ॥ यह विहार अवसर भगवान, करिये देव दया उर आन । भविकजीवखेती कुमलाय, मिथ्यातपसों सूखी जाय ॥ भो परमेश अनुग्रह करो, वानीवरषासों तप हरो । मोक्षमहापुरके परधान, तुम विनजारे दयानिधान ॥ प्रभुसहाय भवि सुखपद लेहिं, आवागमन जलांजुलि देहिं । इहिविधि इन्द्र प्रार्थना करी, सहसनाम करि थुति विस्तरी ॥ भयो अनिच्छया गमन जिनेश, भविजीवनके भागविशेष । सकलसुरासुर जय जय कियो, जिनविहारअम्रतरस पियो ॥ गमनसमय औरे विधि भई, समोसरनरचना खिरगई । चले संग सुर चतुरनिकाय, चहुंविधि सकल चले सुरराय ॥ सुरदुंदभि बाजैं सुखकार, जिनमंगल गावैं सुरनार । हाथ धुजाजुत देवकुमार, चले जाहिं नभमें छविसार ॥ चहुंदिशि चार चारसौ कोश, होय सुभिच्छ सदा निर्दोष ॥ नभविहार जिनवरकै होय, जीवघात तहां करै न कोय सब उपसर्गरहित भगवंत, निरआहार आयुपरयन्त । चतुरानन देखैं संसार, सब विद्यापति परमउदार । प्रभुके तनकी परै न छाहिं, पलक पलकसों लागैं नाहिं । नख अरु केश बढ़ैं नहिं जास, ये दशकेवल अतिशय भास ॥ २७० ॥ भाषा सकल अर्ध मागधी, खिरै सकल संशयहर सधी ॥ नरपशु जातिविरोधी जीव, सब उर मैत्री धरैं सदीव ॥ नानाजाति विरछ दुख दलैं, सबरितुके फल फूलनि फलैं ॥ प्रभुसंचारभूमि मणिमई, दर्पणवत आगमवरनई ॥ सुरभिपवन पीछै अनुसरै, वायुकुमार जनित सुखकरै । सुरनरपशू सभागत जेह, परमानन्दसहित सब तेह ॥ मारुतसुर योजनमित मही, करैं धूलितृणवर्जित सही । मेघकुमार करें मन लाय । गंधोदकवरषा सुखदाय ॥ चरन कमल जिन धारैं जहां । कंचन कमल रचैं सुर तहां ॥ सात कमलतैं आगैं ठान । पीछे सात एकमधि जान ॥

यों पंकजकी पन्द्रह पांति। सवा दोइ सै सब इहि भांति॥ शुकल ध्यान उपजै बहुभाय। निर्मल दिशि निर्मल नभ थाय॥ मुदित बुलावै देव समाज। भविजनको जिन पूजनकाज॥ धर्मचक्र आगे संचरै। सूरजमंडलकी छवि हरै॥ मंगलदर्व आठ झलकाहिं। जथा जोग सुर लीये जाहिं॥ ये चौदह देवनकृत जान। वर अतिशय मंडित भगवान॥ करैं विहार परमसुख होत। भवि जीवनके भाग उदोत॥ स्वर्ग मोक्ष मारग प्रभु सार, प्रगट कियो भ्रमतिमर निवार॥ कहीं कुलिंगी दीखैं नाहिं। भानु उदय ज्यों चोर पलाहिं॥ सब निज निज वांछा अनुसार। पूरन आश भये तनधार॥ २८०॥ काशी कौशलपुर पंचाल। मरहट मारूदेश विशाल॥ मगध अवन्ती मालवठाम। अंग बंग इत्यादिक नाम॥ कीनौ आरजखंड विहार। मेटौ जग मिथ्या अंधियार॥ अब सब गणकी गणना सुनों। यथापुराण कथित विधि सुनों॥ प्रथम स्वयम्भु प्रमुख परधान। दश गणधर सर्वागम जान॥ पूरवधारी परम उदास। सर्व तीनसै अरु पंचास॥ शिष्य मुनीश्वर कहे पुरान। दश हजार नौ सै परवान॥ अवधिवन्त चौदह सै सार। केवल ज्ञानी एक हजार॥ विविधि विक्रियारिद्धि बलिष्ट। एक सहस जानो उतकृष्ट॥ मनपर जय ज्ञानी गुनवन्त। सातशतक पंचास महन्त॥ छसै वादविजयी मुनिराज। सब मुनि सोलहसहस समाज॥ सहस छबीस अर्जिका गनी। एकलाख श्रावकव्रत धनी॥ तीनलाख श्रावकनी जान। वरनी संख्या मूल पुरान॥ देवी देव असंख अपार। पशुगण संख्याते निरधार॥ इहिविधि बारह सभा समेत। रतन त्रय मारग विधि देत॥ विरहमान दरसावत बाट। सत्तर वरष भये कछु घाट॥ सम्मेदाचल शिखर जिनेश। आये श्री पारस परमेश॥ एकमास जिन योग निरोध। मनवचकाय क्रिया सब रोध॥ सूक्षमकाय योगथिति ठान। त्रितियशुकलसंजुत तिहिं ठान॥ तजि संयोगथानक स्वयमेव। आये फिर अयोगपद देव। २९०। पंचलघुक्षर है तिथि जहां, चतुरथ शुकल ध्यानबल तहां। दोय चरम समये जिन भनी, प्रकृति बहत्तर तेरह हनी॥ इहिविधि कर्म जीत भगवान। एक समय पहुंचे निर्वान॥ औ छत्तीस मुनीश्वर साथ। लोकशिखर निवसे जिननाथ॥ सावन सुदि सातैं शुभबार, विमल विशाखा नखत मंझार॥ तजि संसार मोक्षमें गये।

परमसिद्ध परमातम भये ॥ पूरव चरम देहतैं लेश। भये हीन आतम परदेश ॥ अष्टगुनातममय व्यवहार। निहचै गुण अनंत भंडार ॥ सादि अनंतदशा परिनये। सिद्धभाव वसुगुनजुत थये ॥ परम सुखालय वासो लियो। आवागमन जलांजलि दियो ॥ दोहा—पंच कल्यानक पाय सुख, जगत जीव उद्धार भये पूज्य परमातमा, जय जय पास कुमार ॥ जिनके सुखको ज्ञानकी, नहिं उपमा जगमाहिं। जोतिरूप सुख पिंड थिर, इन्द्रीगोचर नाहिं ॥ अब तिनको आकार कछु. एक देश अवधार। लिखों एक दृष्टान्त करि, जिनशासन अनुसार ॥ चौपाई—मोममई इक पुतला ठान। नखशिख सम्मचतुरसंठान ॥ सब तन सुन्दर पुरुषाकार। नराकार इसही विधि सार ॥ माटीसों इमि लेपहु सोय। जैसे त्वचा देहपर होय ॥ कहीं अंग खाली नहिं रहै। अब उपचारकल्पना यहै ॥ ३०० ॥ पुनि सो लीजै अगनि तपाय। संचा रहै मोम गल जाय ॥ अब तो भीतर करो विचार। कहा रह्यो बुध ताहि निहार ॥ अन्तर मूस पोल है जहां, पुरुषाकार रह्यो नभ तहां ॥ याही अंबरके उनहार। ब्रह्मस्वरूप जान निरधार ॥ यह आकाश शून्य जड़ रूप। वह पूरन चेतन चिद्रूप ॥ यही फेर है या वामाहिं। आकृतिमें कछु अन्तर नाहिं ॥ या विधि परम-ब्रह्मको रूप। निराकार साकार सरूप ॥ यह दृष्टांत हिये निज धरो। भवि जिय अनुभवगोचर करो ॥ दोहा—वसैं सिद्ध शिवखेतमें, ज्यों दर्पनमें छांहि ॥ ज्ञाननयनसों प्रगट हैं, चर्म नैंनसों नाहिं ॥ चौपाई—तब इन्द्रादिक सुरसमुदाय। मोक्ष गये जाने जिनराय ॥ श्रीनिर्वाणकल्याणक काज। आये निज निज बाहन साज ॥ परमपवित्त जानि जिनदेह। मणिशिवकापर थापो तेह ॥ करी महापूजा तिहिं बार। लिये अगर चंदन घनसार ॥ और सुगंधदरव शुचि लाय। नमें सुरासुर शीस नमाय ॥ अगनिकुमार इन्द्रतैं ताम। मुकटानल प्रकटी अभिराम। ततखिन भस्म भई जिनकाय। परम सुगंध दशौं दिशि थाय ॥ सो तन भस्म सुरासुर लई ॥ कंठ हिये कर मस्तक ठई ॥ भक्ति भरे सुर चतुरनिकाय। इह विधि महा पुन्य उपजाय ॥ कर आनंद निरत बहुभेव। निज निज थान गये सब देव ॥ ३१० ॥ दोहा—पंच कल्यानक पूज प्रभु, शिवशिरिकंत जिनेश ॥ सब जग सुख सम्पति करो, श्रीपारस परमेश ॥ पद्धड़ी—पहले भव बामन कुलपवित्त। मरुभूत उपन्नी सरलचित्त ॥ दूजे वनहस्ती वज्रघोष। जिन पाले बारहव्रत अदोष ॥ तीजो भव द्वादशस्वर्गवास। सहस्रार नाम सब सुखनिवास ॥ चौथे भव विद्याधरकुमार। लघु वैस लियो चारित्रभार ॥ पंचम भव अच्युत सुरग थान। बाईस जलधि जहं तिथि प्रमान ॥ छट्ठे भवमें चक्रीनरेश जिन साधे सहसबत्तीस देश ॥ सातवें जनम अहमिन्द्र होय। सुख कीने चिर उपमा न कोय ॥ आठम भव श्रीआनंदराय। तजि राजरिद्धि बन बसे जाय। सोलहकारन भाये मुनिन्द्र। पुनि भये बारमें स्वर्ग इन्द्र ॥ इहि विधि उत्तम नौ जनम पाय ॥ वामाजननी उर बसे आय ॥ जो गरभ जनम तप ज्ञान काल। निर्वाण पूज्य कीरति विशाल ॥ सुर नर मुनि जाकी करैं सेव। सो जयो पार्श्वदेवाधिदेव ॥ दोहा—नाम लेत पातक भजैं, सुमरत संकट जाहिं। तेईसम अवतार मुझ, बसोसदा हियमाहिं ॥ छप्पय—कमठ जीव तन छोरि, तृतिय कुरकट अहि जायो ॥ नरक पंचमें जाय, आय अजगर तन पायो ॥ धूम प्रभामें उपजि भील अति भयो भयानक। चरम नरक पुनि सिंघ, फेर पंचमभू थानक ॥ पशुजौनि भुंजि महिपाल नृप,

देव ज्योतिषी अवतरो ॥ इह विधि अनेक भवदुख भरे, बैरभाव विषतरु फल्यो ॥ दोहा—छिमाभाव फल पासजिन, कमठबैर फल जान। दोनों दिशा विलोकिकै, जो हित सो उर आन ॥ ३२० ॥ सोरठा—जीव जाति जावंत, सबसों मैत्रीभाव करि। याको यह सिद्धांत, बैर विरोध न कीजिये * ॥ सवैया—जो भगवान बखान करी धुनि, सो गुरु गौतमने उर आनी। तापर आइ ठई रचना कछु, द्वादश अंग सुधारस, बानी ॥ ता अनुसार अचारजसंघ, सुधीबलसों बहुकाव्य वखानी। यों जिनग्रन्थ यथारथ हैं, अयथारथ हैं सब और कहानी ॥ दोहा—जितने जैनसिद्धांत जग, ते सब सत्यसरूप। धर्मभावना हेत सब, हितमित शिक्षारूप ॥ कलपित कथा सुहावनो, सुनते कौन अरत्थ। लाख दाम किस कामके, लेखन लिखो अकत्थ ॥ सोरठा—सुन श्रीपार्श्वपुरान, जान शुभाशुभ कर्मफल। सुहित हेत उर आन, जगत जीव उद्यम करो। प्रभु चरित्र मिस किमपि यह, कीनो प्रभु गुनगान। श्रीपारस परमेशको, पूरन भयो पुरान ॥ विलोकिकै, भूधर बुद्धि समान। भाषाबंध प्रबन्ध यह, कियो आगरे थान ॥ छप्पय—अमर-न कहि पिंगल पेख्यो। काव्य कंठ नहिं करी, सारसुतसो नहिं सीख्यो ॥ अच्छर मानदर्जित विधि हीनी। धर्मभावनाहेतु, किमपि भाषा यह कीनी ॥ जो अर्थ छन्द अनमिल च फेर सवांरियो। सामान्यबुद्धि कविकी निरखि, छिमाभाव उर धारियो ॥ दोहा—जिनशा-नि अनुसार सब, कथन कियो अवसान। निज कपोलकल्पित कहीं, मति समझो मतिवान ॥ छयउपशम-की ओछसों, कै प्रमादवश कोय। इहिविधि भूल्यो पाठ मैं, फेर संवारो सोय ॥ ३३० ॥ पंच वरष कछु सरससे, लागे करतन वेर ॥ बुधि थोरी थिरता अलप, तातैं लगी अबेर ॥ सुलभ काज गरुवो गनै, अलपबुद्धिकी रीत। ज्यों कीड़ी कण ले चलै, किधौं चली गढ़ जीत ॥ विघनहरन निरभय करन, अरुन वरन अभिराम। पासचरन संकटहरन, नमो नमो गुनधाम ॥ छप्पय—नमो देव अरहन्त, सकल तत्वा-रथभासी। नमो सिद्ध भगवान, ज्ञानमूरति अविनाशी ॥ नमो साध निर्ग्रन्थ, दुविधि परिग्रह परित्यागी। जथाजात जिन लिंग धारि, वन बसे विरागी ॥ बन्दों जिनेशभाषित धरम, देय सर्व सुख सम्पदा ॥ ये सार चार तिहुंलोकमें, करो क्षेम मंगल सदा ॥ दोहा—संवत् सतरह सै समय, और नवासो लीय। सुदि अषाढ़ तिथि पंचमी, ग्रन्थ समापत कीय ॥ ३३६ ॥

इति श्रीपार्श्वपुराणभाषायां भगवन्निर्वाणगमनवर्णनं नाम नवमोऽधिकारः

* उक्तं च—सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं। क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वं ॥ माध्यस्थ भावं विपरीत वृत्तौ। सदागमात्मा विधधातु देवः ॥ ३२३ ॥

सरस्वती भवन

# प्रतिदिन काममें आनेवाले ग्रन्थोंकी सूची

| | | | |
|---|---|---|---|
| पद्म पुराण | १०) | नित्यपूजा संग्रह | ।) |
| हरिवंश पुराण | ८) | कर्मदहन विधान | ।) |
| रत्नकरंड श्रावकाचार | ५॥) | पंच परमेष्ठी विधान | =) |
| बृहद् विमल पुराण | ६) | पंच कल्याण विधान | =) |
| चौबीसी पुराण | ३) | सम्मेद शिखर विधान | =) |
| चौबीसी पुराण ( सचित्र ) | ४) | आहार विधि | ।) |
| मल्लिनाथ पुराण | ४) | सच्चा जिनवाणी संग्रह | ।) |
| आदिनाथ पुराण | ६) | नित्य पाठ गुटका ( संस्कृत ) | ।) |
| पुरुषार्थ सिद्धुपाय | ४) | षोड़स संस्कार | ।) |
| आराधना कथाकोष ( ३ भाग ) | ३॥।) | प्रेम | ।) |
| पुन्याश्रव कथाकोष | ३) | नवीन तीर्थयात्रा | ।) |
| चरचा समाधान | २) | प्रद्युम्न चरित्र | ॥) |
| सप्तव्यसन चरित्र | १॥।) | भाग्य उद्योग | ॥) |
| पार्श्वनाथ पुराण | १॥) | पोपोंकी पांच कहानियां | ॥) |
| सुकुमाल चरित्र | १) | वीरपूजा नाटक | १॥) |
| भक्तामर कथा ( यंत्र मंत्र ) | १।) | शीलमहिमा नाटक | ॥=) |
| जैन भारती | १।) | दरशव्रत नाटक | ।) |
| जैनव्रत कथाकोष | २॥) | आदर्श नाटक | =) |
| रामवनवास | १) | सोमासती नाटक | =) |
| चारुदत्त चरित्र | ॥।) | जैन गायन सुधा | ॥) |
| रामचन्द्र चौबीसी पाठ | १) | दौलत जैनपद संग्रह | ॥) |
| बृन्दाबन चौबीसी पाठ | १) | जिनेश्वर पद संग्रह | ।–) |
| बड़ा पूजा विधान | २॥) | भूधर जैन पद | ।–) |
| भाद्रपद पूजा संग्रह | ॥=) | भागचन्द जैनपद | ।) |
| दशलक्षण धर्म संग्रह | ।–) | महाचन्द जैनपद | ।) |

सरस्वती भवन

## जिनवाणी प्रचारक कार्यालय

४ बी, मछुआ बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता ।

आचार्य कुन्द कुन्द सरस्वती भवन
A 4 बापूनगर जयपुर
पुस्तकालय
307